

पूर्वमध्य कालीन हिन्दू देव प्रतिमाएं  
प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग  
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

लघु शोध प्रबन्ध



सत्र 2015-2016

निर्देशक

डॉ० देवेन्द्र कुमार गुप्ता

प्रोफेसर

अध्यक्ष

डा० भा० इति० सं० एवं पुरातत्त्व विभाग

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय एम. ए. तृतीय सेमेस्टर  
हरिद्वार

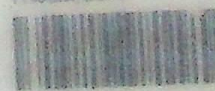
शोधार्थी

गौरव सिंह

प्राच्य विद्या संकाय

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

हरिद्वार - 249404, उत्तराखण्ड



182781

www.gurukul.org





214-6  
LHARU  
R



पूर्वमध्य कालीन हिन्दू देव प्रतिमाएं  
प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग  
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

लघु शोध प्रबन्ध



सत्र 2015-2016

निर्देशक

डॉ० देवेन्द्र कुमार गुप्ता

प्रोफेसर

शोधार्थी

गौरव सिंह

अध्यक्ष

पा० भा० इति० सं० एवं पुरातत्त्व विभाग

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय एम. ए., तृतीय सेमेस्टर  
हरिद्वार

प्राच्य विद्या संकाय

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

हरिद्वार - 249404, उत्तराखण्ड





182781

R  
TH96M  
SIN-P

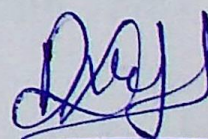




## ॥ प्रमाण-पत्र ॥

प्रमाणित किया जाता है कि गौरव सिंह ने मेरे निर्देशन में एम0 ए0 प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विषय में तृतीय सेमेस्टर, वर्ष 2015-16 के प्रश्न पत्र MHS- 307 की पूर्ति हेतु लघु शोध प्रबन्ध 'पूर्वमध्य कालीन हिन्दू देव प्रतिमाएं' शीर्षक पर शोध कार्य पूर्ण किया है।

शोध निर्देशन



डॉ० देवेन्द्र कुमार गुप्ता

प्रोफेसर

प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग,

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार







## आभार

‘ॐ गुरु ब्रह्म गुरु विष्णुः गुरुदेव महेश्वरः

गुरु देवः परब्रह्म, तस्मै श्री गुरुवे नमः ॥

प्रस्तुत कार्य में जिन विद्वानों ने मुझको अपना अमूल्य सहयोग प्रदान किया है उन सबका धन्यवाद करना मैं अपना परम कर्तव्य समझता हूँ, इस सन्दर्भ में सर्वप्रथम मैं अपने निर्देशक प्रो० देवेन्द्र कुमार गुप्ता का हृदय से आभार प्रकट करता हूँ। जिनके द्वारा निर्देशित ग्रन्थों, पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं अथवा अन्य किसी भी प्रकार की सामग्री, स्रोतों से मैंने अपने इस कार्य के लिए सामग्री ग्रहण की है।

मैं प्रायः स्मरणीय माता श्रीमती कुसुम देवी एवं पिता श्री देवेन्द्र सिंह एवं घर के अन्य सदस्यों का भी मैं धन्यवाद करता हूँ। मैं अपने उत्तरदाताओं को धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ, जिन्होंने गम्भीरता से मेरे उद्देश्य को समझकर सहयोग किया।

गौरव सिंह

एम. ए., तृतीय सेमेस्टर







# प्रस्तावना







## पूर्वमध्यकालीन हिन्दू देव प्रतिमाएं

### प्रस्तावना

प्रतिमाएं या देवमूर्तियां अनुकृति (या छवि या शबीह) न होकर वास्तव में सामूहिक सामाजिक चिन्तन का परिणाम रही हैं। प्रतिमालक्षण (आइकनोग्राफी) में शास्त्रों में निरूपित और प्रस्तर, धातु एवं मिट्टी की मूर्तियों तथा चित्रों एवं अन्य माध्यमों में रूपायित देवी-देवताओं तथा अन्य उपास्य देवों का लक्षणपरक अध्ययन किया जाता है। यह अध्ययन काल और क्षेत्र के संदर्भ में विकासपरक और सामाजिक धार्मिक चिन्तन प्रक्रिया के विश्लेषण से सम्बन्धित है। धर्मोत्तर मूर्तियां प्रतिमा या प्रतिमालक्षणिक अध्ययन की परिधि में नहीं आती।

सातवीं से 13वीं शती ई० के मध्य विभिन्न क्षेत्रों में बड़ी संख्या में मंदिरों का निर्माण हुआ।<sup>1</sup> मंदिरों के विभिन्न भगों पर उकेरी गयी असंख्य देव-मूर्तियों में अभिव्यक्त लक्षणपरक भेद और उनकी विविधता के अध्ययन की दृष्टि से मध्यकाल विशेष समृद्ध रहा है।

धार्मिक दृष्टि से आठवीं से 12वीं शती ई. के मध्य का काल उतार-चढ़ाव का काल रहा है। सातवीं शती ई. तक उत्तरी भारत में बौद्ध धर्म की प्रमुखता थी, किन्तु सातवीं शती ई० के बाद इस धर्म का अवसान होने लगा और विभिन्न स्थलों पर स्थित बौद्ध केन्द्रों का पतन प्रारम्भ हो गया। सातवीं शती ई. के बाद इस धर्म का प्रसार क्षेत्र पूर्वी भारत तक ही सीमित रह गया।<sup>2</sup> पूर्वी भारत को छोड़ कर देश के अन्य भागों से बौद्ध धर्म के पतन का कारण सम्भवतः उन स्थलों पर ब्राह्मण धर्म का विशेष महत्व तथा बौद्ध धर्म की ब्राह्मण धर्म के प्रति असहिष्णुता की भावना थी, जो बौद्ध देवमूर्तियों में व्यक्त हुई है। प्रतिहार शासक ब्राह्मण धर्म के अनुयायी थे, जिनके आराध्यदेव शिव, शक्ति, विष्णु और सूर्य थे। पश्चिम में मैत्रक शासक भी शैव धर्मानुयायी थे। कश्मीर में कार्कोट तथा उत्पल







राजवंशों के शासक भी मुख्यतः ब्राह्मण देवपूजक थे।<sup>3</sup> यद्यपि उपर्युक्त राजवंशों के शासक ब्राह्मण धर्मानुयायी थे, तथापि उन्होंने बौद्ध धर्म का कभी विरोध नहीं किया। बिहार और बंगाल में बौद्ध धर्म पाल शासकों के संरक्षण में 1000 ई० तक विकसित होता रहा।

साहित्यिक उद्धरणों एवं पुरातात्विक अवशेषों से ज्ञात होता है कि मध्यकाल में जैन धर्म राजस्थान, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र और कर्नाटक में विशेष लोकप्रिय था।

11वीं-12वीं शती ई. में जैन धर्म की विशेष प्रधानता दिखायी देती है। परवर्ती चालुक्यों (हुम्मच), होयसल (हलेबिड, अर्सिकेरी) तथा गंग (श्रवणबेलगोल) शासकों के समय दक्षिण भारत में जैन धर्म लम्बे समय तक एक प्रमुख धर्म बना रहा। होयसल शासक यद्यपि वैष्णव धर्म के अनुयायी थे तथापि उन्होंने जैन धर्म के विकास में पर्याप्त योगदान दिया। दूसरी ओर शैव धर्म के कट्टर अनुयायी चोल और पाण्ड्य शासकों ने जैन धर्म का विरोध किया।<sup>4</sup>

ब्राह्मण धर्म सदैव अपने उदार दृष्टिकोण के लिए प्रसिद्ध रहा है। यही कारण है कि समय-समय पर इस धर्म में बौद्ध एवं जैन धर्मों तथा लोक धर्म के देवों को भी सम्मानजनक स्थान मिला। 10 वीं शती ई. के अन्त में ब्राह्मण धर्म की सार्वभौमिकमता स्थापित हुई और इसके सिद्धान्तों का पुनर्विवेचन हुआ। इस धर्म के प्रमुख आराध्यदेव शिव, विष्णु, सूर्य, गणेश और शक्ति थे। मध्यकाल में इन्हीं को समर्पित सर्वाधिक स्वतन्त्र मन्दिर बने तथा प्रभूत संख्या में इन्हीं देवताओं का रूपायन हुआ।

वास्तुकला, मूर्तिकला एवं प्रतिमालक्षण की दृष्टि से भी मध्ययुग बहुआयामी विकास का युग रहा है। पूर्वकालीन भारतीय कला की समृद्ध परम्परा मध्यकाल में







एक विराट आयाम तानि क्षेत्रीय विशिष्टताओं की दृष्टि से उत्कर्ष की अवस्था में पहुँच गई थी।

पंचानन शिव के पांच मुख प्रकृति के पांच मूल तत्त्वों, चतुष्पाद शिव सकल और निष्कल स्वरूपों ब्रह्मा के चार मुख चार वेदों या ऋचाओं तथा दिशाओं और वैकुण्ठ विष्णु के चार मुख चतुर्व्यूह (वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध) के सूचक हैं।<sup>5</sup> इसी प्रकार अर्द्धनारीश्वर और हरिहर मूर्तियां क्रमशः प्रकृति और पुरुष तथा शैव एवं वैष्णव तत्त्वों का समन्वय दर्शाती हैं। विश्वरूप विष्णु, महिषमर्दिनी तथा सप्तमातृका मूर्तियों की परिकल्पना में विभिन्न देवा तत्त्वों एवं उनके शक्ति समुच्चय की अवधारणा की अभिव्यक्ति हुई है। देवस्वरूपों की अवधारणा और उनकी मूर्त अभिव्यक्ति में उनके हाथों, आयुधों, वाहनों एवं पार्श्वदेवताओं के माध्यम से देवताओं की प्रकृति और गुण स्वरूप को अभिव्यक्त किया गया है, जो समाज के समकालीन चिन्तन और आवश्यकताओं की प्रतिच्छवि प्रस्तुत करता है।

ज्ञातव्य है कि श्रवणबेलगोला (कर्नाटक) स्थित बाहुबली गोम्मटेश्वर की 58 फीट ऊँची एकाश्म पत्थर में उकेरी प्रतिमा 983 ई० प्राचीन भारत की विशालतम धार्मिक मूर्ति है। यह प्रतिमा अप्रतिम साधना के प्रतीक बाहुबली के प्रति असीन श्रद्धा की साक्षी है। मध्यकाल में अपार संख्या में देवमूर्तियों का क्षेत्रीय विविधताओं एवं लक्षण आधिक्य के साथ निरूपण हुआ।<sup>6</sup> मध्यकाल में देव प्रतिमाओं का निर्माण इतने विशाल स्तर पर हुआ कि उनके समुचित और सांगोपांग अध्ययन के लिए शास्त्रीय विधान एवं स्थानीय तथा क्षेत्रीय लिखित और अलिखित परम्पराओं तथा मूर्त उदाहरणों का तुलनात्मक अध्ययन और उनमें होने वाले कालगत एवं क्षेत्रीय विकास का निरूपण अत्यन्त दुरूह कार्य है। ब्राह्मण देव प्रतिमाओं के लक्षणों की दृष्टि से विभिन्न पुराणों, काश्यप शिल्प, समरांगणसूत्रधार, अपराजितपृच्छा, मानसोल्लास, रूपमण्डन, श्रीतत्त्वनिधि तथा दक्षिण भारत के आगम ग्रन्थों का विशेष महत्व है। इन आधार शास्त्रीय ग्रन्थों के सन्दर्भ में एक







महत्वपूर्ण ध्यातव्य बात यह है कि इनमें अधिकांश 12-13 वीं शती ई. या उसके बाद की कृतियां हैं, जिनमें पूर्व की शिल्पशास्त्रीय परम्पराएं भी संरक्षित हैं। शिल्पशास्त्रीय ग्रन्थों की सीमित उपलब्धता एवं उनकी कालसीमा की पृष्ठभूमि में मध्यकाल में ओसियां, भुवनेश्वर, हिंगलाजगढ़, राजगीर, नालन्दा, कुर्किहार, खजुराहो, एलोरा, मोढेरा, बादामी, अयहोल, पट्टडकल, देलवाड़ा, कुम्भारिया, हलेबिड, अमृतापुर, तंजौर जैसे पुरास्थलों पर पांच सौ से हजार या उससे अधिक देवमूर्तियों का रूपायन और उनमें स्वयं तथा लक्षणों के स्तर पर मिलने वाली विविधत स्पष्टतः विभिन्न क्षेत्री स्थानीय परम्पराओं के व्यवहार तथा शास्त्रीय मर्यादा के अन्तर्गत शिल्पियों द्वारा नूतन प्रयोगों की सम्भावनाओं को उजागर करती है।

पूर्वमध्यकालीन प्रतिमालक्षण अत्यन्त जटिल था जिसमें आंचलिक और जनजातीय तत्वों की प्रधानता भी स्पष्ट है, जिसका एक विलक्षण उदाहरण विलासपुर के ताला गांव से प्राप्त शिव की महाप्रमाण (9 फीट ऊँची) स्थानक मूर्ति (10-11वीं शती ई.) है। इस मूर्ति में द्विभुज देवता के शरीर पर नौ मुखों का अंकन हुआ है जिनमें मानव (बालरूप), कपि और सिंह मुख भी है।<sup>7</sup> आंचलिक या जनजातीय परम्परा की संवाहक प्रस्तुत मूर्ति में ऊर्ध्वलिंग और उग्र स्वरूप वाले शिव के शारीरिक अवयवों के निर्माण में सर्प, वृश्चिक, कर्क, मत्स्य, मयूर जैसे जीव-जन्तुओं का उरकरन ध्यातव्य है जो शिव के पशुपति रूप की अवधारण के अनुरूप है।

पूर्वमध्यकाल में राजनीतिक सामाजिक स्तर पर आपसी संघर्ष तथा भीतर और बाहर की चुनौतियों एवं निरन्तर होने वाले विदेशी हमलों की विषम परिस्थितियों में आक्रमक (या संहारक) और प्रतिरोधक (या प्रतिरक्षात्मक) क्षमता वाले देवस्वरूपों की तीन प्रमुख धर्मों (ब्राह्मण, बौद्ध, जैन) में बहुतायत में कल्पना की गयी।<sup>8</sup> ऐसे देवस्वरूपों के रूपायन और पूजन के पीछे स्वयं की रक्षा और







साथ ही सामर्थ्य में वृद्धि का मनोवैज्ञानिक भाव भी निहित था। कई हाथों वाले देवताओं को युद्ध से सम्बन्धित विभिन्न संहारक आयुधों (त्रिशूल, चक्र, खड्ग, धनुष, बाण, शूल, वज्र, छुरिका, परशु) से सज्जित कर निरूपित किया गया है। देवता की शक्ति में वृद्धि के उद्देश्य से उनके हाथों की संख्या में भी वृद्धि की गयी और मूर्तियां सामान्यतया चार से (खजुराहो की नरसिंह मूर्ति) चौंसठ हाथों वाली बनने लगी। विष्णु के वराह या नरसिंह स्वरूप सभी क्षेत्रों में सर्वाधिक लोकप्रिय थे इसी प्रकार शिव के त्रिपुरान्तक, अन्धकारि, गजान्तक तथा शक्ति के महिषमर्दिन और चामुण्डा स्वरूपों की मूर्तियां सर्वाधिक संख्या में बनीं। दक्षिण की तुलना में उत्तर भारत में विदेशी चुनौतियों की अधिक विकट स्थिति थी और सम्भवतः इसी कारण उत्तर भारत में ऐसे देवस्वरूपों की तुलनात्मक दृष्टि से अधिक मूर्तियां बनीं और उनमें देवताओं की उग्रता और संहारक शक्ति की अभिव्यक्ति भी आयुधों एवं शारीरिक चेष्टाओं के स्तर पर अधिक प्रखर है।

पूर्वमध्यकालीन प्रतिमाओं में विशेषतः बौद्ध देव मूर्तियों के सन्दर्भ में अनेकशः देवताओं के सामर्थ्य को ब्राह्मण देवी-देवताओं की तुलना में श्रेष्ठ बतलाने की चेष्टा की गयी है। ऐसा प्रतीत होता है कि बिहार, उड़ीसा और बंगाल के क्षेत्रों में मध्यकाल में बौद्धों ने ब्राह्मण धर्म और उनके देवताओं को ही चुनौती के रूप में स्वीकार किया।<sup>9</sup> यही कारण है कि समन्वय और सामन्जस्य की भारतीय परम्परा से हटकर मध्यकालीन बौद्ध मूर्तियों में, ब्रह्मा, विष्णु, शिव, गणेश, इन्द्र और शक्ति को अपमानजनक स्थित में और कभी कभी बौद्ध देवों के पैरों के नीचे दिखलाया गया। बौद्ध धर्म और कला में ब्राह्मण धर्म के प्रति अभिव्यक्त कटुता के भाव के कारण ही सम्भवतः कालान्तर में एशिया के विभिन्न देशों में विशेष लोकप्रिय बौद्ध धर्म का प्रभाव अपनी ही जन्मस्थली भारत में काफी क्षीण हो गया। ब्राह्मण विरोध के कारण बौद्ध मुसलमान भी होने लगे थे। जैन कला में समन्वय का यह भाव ब्राह्मण धर्म के प्रति आदरभाव के साथ व्यक्त हुआ







है। देवाधिदेव के रूप में तीर्थकरों की श्रेष्ठता बरकरार रखते हुए उनके यक्ष और यक्षी या शासनदेवताओं के रूप में अनेकशः गोमुख-चक्रेश्वरी, ईश्वर-गौरी, कुमार, ब्रह्मशान्ति आदि के रूप में ब्रह्मा, विष्णु, शिव, वैष्णवी, कार्तिकेय जैसे ब्राह्मण देवी-देवताओं को रूपायित किया गया। 22वें तीर्थकर नेमिनाथ को बलराम और वासुदेव कृष्ण का चचेरा भाइ बताया गया है और इस पृष्ठभूमि में ही मध्यकाल में देवगढ़ एवं मथुरा की नेमिनाथ की मूर्तियों में हलधर-बलराम और चक्रधर वासुदेव कृष्ण की आकृतियां उत्कीर्ण की गयीं।

पूर्वमध्यकालीन देव-मूर्तियां अधिकांशतः मन्दिरों के विभिन्न भागों पर उत्कीर्ण है।<sup>10</sup> इनके निर्माण में शासकों की मुख्य भूमिका रही है। शासकों के अतिरिक्त व्यापारियों, व्यवसायियों, सामन्तों, मन्त्रियों और यहां तक कि सामान्यजनों ने भी मन्दिरों और मूर्तियों का निर्माण कराया। जिसका प्रमाण 10वीं से 13वीं शती ई. के मध्य के श्रेष्ठतम और विशालतम मन्दिर तथा उन पर उकेरी असंख्य देव मूर्तियां हैं।

खजुराहो के पार्श्वनाथ जैन मन्दिर (ल० 950-70 ई.) की भित्तियों पर तीर्थकरों और अम्बिका यक्षी के साथ ही विष्णु, शिव, ब्रह्मा, राम, बलवान और काम की स्वतन्त्र एवं शक्तिसहित आलिंगन मूर्तियों का भी उकेरन हुआ है जो इस स्थल पर धार्मिक सांजस्य और सौहार्द का प्रमाण है। इसी प्रकार ओसियां (सूर्य मन्दिर), खजुराहो (विश्वनाथ एवं कन्दरिया महादेव मन्दिर) तथा भुवनेश्वर (मुक्तेश्वर मन्दिर) के ब्राह्मण मन्दिरों पर जैन तीर्थकरों की मूर्तियों का उत्कीर्णन भी महत्पूर्ण है।<sup>11</sup>

पूर्वमध्यकालीन देवमूर्तियों के अध्ययन में विभिन्न क्षेत्रीय तत्वों का ध्यान रखना नितान्त आवश्यक है। किसी परम्परा की कुछ क्षेत्रों में मान्यता और कुछ में अस्वीकृति के अपने कारण और आग्रह रहे हैं, जिसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण







दक्षिण भारत में सूर्य की मूर्तियों में उदीच्यवेश, यानी उपानह, वर्म और अव्यंग का नहीं दिखाया जाना है जो परम्परा के प्रति उनकी प्रतिबद्धता दर्शाती है। इसी प्रकार उत्तर भारत में कुषाण काल से मध्यकाल तक तीर्थकर मूर्तियों में अनिवार्य रूप से वक्षःस्थल में उत्कीर्ण श्रीवत्स चिन्ह दक्षिण भारत की तीर्थकर मूर्तियों में अनुपलब्ध है। इसका कारण दक्षिण भारत में बुद्ध मूर्तियों की अनुपलब्धता के परिप्रेक्ष्य में बुद्ध और तीर्थकर मूर्तियों में भेदपरक चिन्ह के रूप में श्रीवत्स चिन्ह की अनावश्यकता थी।

शिल्पशास्त्रीय परम्परा से निर्दिष्ट देवस्वरूपों के साथ ही विभिन्न क्षेत्रों में विरल स्वरूपों वाली देव मूर्तियाँ भी अधिसंख्या में बनी, जो स्थानीय परम्पराओं या शिल्पी और धर्माचार्यों के चिन्तन का परिणाम और तत्कालीन सामाजिक आवश्यकता का प्रतिफल था।

बाहुबली की मूर्तियों में साधनारत बाहुबली के शरीर से लिपटी लता-वल्लरियाँ प्रकृति के साथ बाहुबली के एकाकार होने की सूचक हैं ऐसे ही बाहुबली के शरीर पर सर्प, वृश्चिक् का अंकन और शिव-पशुपतिनाथ के साथ सर्प, मृग, व्याघ्र आदि का दिखाया जाना भी पशु जगत के प्रतिसम्मान तथा पर्यावरण सन्तुलन के प्रति मध्यकालीन शिल्पी के आग्रह और प्रतिबद्धता को व्यक्त करता है। नाग और वृक्ष पूजन की प्राचीन परम्परा भी निरन्तर विकसित होती रही। वास्तव में मध्यकालीन देवी मूर्तियों में प्रकृति जगत् का महत्व एक स्वतन्त्र अध्ययन का विषय है।

इस प्रकार मध्यकालीन देवमूर्तियों का अध्ययन अत्यन्त जटिल एवं बहुआयामी है जिसमें धार्मिक सामाजिक समन्वय भी है, कटुता भी है और अलग अलग काल और क्षेत्र के संदर्भ में प्रतिमालक्षण की दृष्टि से क्षेत्रीय विशेषता है।







सन्दर्भ ग्रन्थ एवं टिप्पणियां —

1. वायु पुराण, 98/71
2. कुमार 7:42
3. पी के अग्रवाल, गुप्त टे आ पृ0 67, 68
4. वही पृष्ठ 68
5. पी के अग्रवाल, वही पृ. 91-92
6. कुमारस्वामी, हि. इ. इ. आ. चित्र 177
7. पी. के. अग्रवाल, वही फलक 14 चित्र डी
8. पी. के. अग्रवाल, वही पृ0 91
9. भागवत पुराण, 1/3/6-22
10. वही, 1/3/16-22
11. तैत्तिरीय सं0, 6,2,4,2







# शिव-प्रतिमाए



ब्रह्मसूत्र-प्रस्तावना



## शिव प्रतिमाएं

शिव महादेव रूप में अपने पांच स्वरूपों सद्योजात, वामदेव, अघोर, तत्पुरुष और ईशान में सृष्टि के पांच मूल तत्वों जल, पृथ्वी, अग्नि, वायु और आकाश को नियन्त्रित करते हैं। महेश मूर्तियों में शिव त्रिमुख दिखाये गये हैं जिनमें मृदु, सौम्य एवं रौद्र मुखों के माध्यम से उनके सृष्टि की रचना, पालन और संहार कार्यों से सम्बद्ध होने का संकेत दिया गया है। इन उदाहरणों में मध्य का सौम्य मुख तत्पुरुष या महादेव, बायीं (या दाहिनी) ओर की मृदु मुखाकृति वामदेव या उमा तथा तीसरा उग्र या रौद्र मुख अघोर या भैरव स्वरूप से सम्बन्धित माना गया है।

कुषाण-गुप्तकाल तक शिव के सामान्य एकल स्वरूप के अतिरिक्त लिंगविग्रह (मुखलिंग), उमामहेश्वर, अर्द्धनारीश्वर तथा कुछ अन्य स्वरूपों की मूर्तियां बनने लगीं, किन्तु गुप्तकाल के बाद पौराणिक कथाओं के आधार पर शिव के कई अन्य स्वरूपों का विकास हुआ। मध्यकाल में शिव के पाशुपत सम्प्रदाय से ही कापालिक और कालामुख जैसे अघोर सम्प्रदाय विकसित हुए। इस काल में शैव परिवार में शिव के अतिरिक्त पार्वती, गणेश, कार्तिकेय एवं गंगा को भी शामिल किया गया है। फलस्वरूप विभिन्न मूर्ति स्वरूपों में शिव के साथ अनेकशः इनकी आकृतियां भी निरूपित हुई (नटेश, कल्याण-सुन्द, उमा-महेश्वर, गंगाधर, चण्डेशानुग्रह आदि)। शिव के लक्षणों में वृषभ वाहन तथा हाथों के त्रिशूल (या शूल), परशु, सर्प, मृग या डमरू मुख्य है।

शिव भारतीय कला में मुख्यतः तीन रूपों में अभिव्यक्त हुए हैं, प्रतीक (लिंगविग्रह, मुखलिंग, लिंगोद्भव स्वरूप एवं त्रिशूल), पशु (वृषभ या नन्दी) एवं मानव विग्रह। मध्यकालीन मूर्तिकला में शिव के विविध रूपों का निरूपण मिलता







है जिनमें शिव के कुछ विरल स्वरूपों के भी दर्शन होते हैं। महाप्रामाण मूर्ति (तलागांवा, विलासपुर, म०प्र०) विशेष उल्लेखनीय है।

शिव की मानव विग्र प्रतिमाओं को अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से निम्नलिखित चार वर्गों में बांटा जा सकता है—

1. सौम्य या शान्त मूर्तियां — एकल शिव, उमा-महेश्वर (या सोमस्कन्द), लकुलीश, दक्षिणामूर्ति (ज्ञान, योग, व्याख्यान, वीणाधर), कल्याण-सुन्दर (या पार्वती-परिणय), गंगाधर, चन्द्रशेखर (केवल एवं आलिंगन चन्द्रशेखर)।
2. अनुग्रह मूर्तियां — रावणानुग्रह, किरातार्जुन (अर्जुनानुग्रह), चण्डेशानुग्रह, विष्णवानुग्रह (चक्रदान मूर्ति), नन्दीशानुग्रह, विघ्नेश्वरानुग्रह, देव्यानुग्रह तथा रावण शिरस् दान।
3. संहार या उग्र मूर्तियां — यमान्तक (कलारि), त्रिपुरान्तक, अन्धकारि, गजान्तक, कामान्तक, शरभेश, ब्रह्मशिरश्छेदक, भैरव (बटुक भैरव एवं 64 भैरव), वीरभद्र, जालन्धर वध एवं भिक्षाटन।
4. अन्य स्वरूप— नटराज (नटेश), अजएकपाद (या एक पाद शिव), सदाशिव, महेश, एकादशरुद्र, विशापहरण मूर्ति।

संघात या संयुक्त मूर्तियों के अन्तर्गत, अर्द्धनारीश्वर, हरिहर, हरिहरपितामह, हरिहरहरिण्यगर्भ तथा मार्तण्डभैरव (या रुद्रभास्कर) स्वरूप मुख्य हैं।

### लिंग-विग्रह

लिंगरूप में शिव के पूजन की परम्परा प्राचीन काल से ही लोकप्रिय थी। वस्तुतः योनिपट्ट पर स्थापित शिवलिंग सृष्टि के मूल में लिंग और योनि या पुरुष और प्रकृति के समन्वय और एकात्मका का परिचायक है। इस सन्दर्भ में







सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि मानव रूप में शिव के विविध स्वरूपों की कल्पना के बाद भी स्वतन्त्र शिवलिंगोंके निर्माण और पूजन की अबाध परम्परा मध्ययुग में सभी क्षेत्रों में देखी जा सकती है। लगभग आठवीं से तेरहवीं शती ई. के मध्य और उसके बाद भी अद्यतन शिव मन्दिरों के गर्भगृह में मानव विग्रह के स्थान पर शिवलिंगों की ही प्रतिष्ठापना की गयी।

संभवतः सैन्धव सभ्यता में भी लिंग पूजन की परम्परा व्यवहार में थी। पर दक्षिण भारत में गुडीमल्लम (उत्तरी आर्कोट जिला) से प्राप्त दूसरी पहली शती ई. पू. का शिवलिंग लिंगपूजन तथा मूर्ति निर्माण का प्रारंभिकतम पुरातात्विक प्रमाण माना गया है। शिवलिंग के समक्ष भाग में अपस्मार पुरुष पर खड़ी शिव की मानव आकृति भी बनी है। गुप्तकाल में शिवलिंगों का निर्माण और अधिक लोकप्रिय हुआ जिसके कुछ उत्कृष्ट उदाहरण भूमरा, उचहरा एवं खोह जैसे स्थलों से मिले एकमुखी शिवलिंगों में द्रष्टव्य हैं।<sup>1</sup> मध्यकाल में शिव मंदिरों के गर्भगृह में स्थापित सामान्य शिवलिंग के अतिरिक्त विभिन्न क्षेत्रों से एकमुखी से पंचमुखी शिवलिंगों के अनेक स्वतन्त्र उदाहरण भी मिले हैं। प्राचीन भारत में लिंगपूजा करने वालों का एक स्वतन्त्र सम्प्रदाय भी था जिसे वीर शैवया लिंगायत शैव के नाम से जाना जाता था।

मुखलिंग में रुद्रभाग पर एक, तीन, चार या पांच मुखों के निर्माण का विधान है। चतुर्मुख शिवलिंग में चारों ओर चार शिव मुख बने होंगे। शिवलिंगों के कुछ प्रारम्भिक उदाहरणों को छोड़कर अन्य उदाहरणों में चार ही मुख दिखाये गये हैं। क्योंकि पांचवा मुख ईशान या आकाश का सूचक है जिसे अव्यक्त और दृष्ट से परे माना गया है। चन्द्रशेखर मूर्तियों के समान दिखाये जायेंगे जिसमें घुटनों के नीचे का भाग प्रदर्शित नहीं होगा।







इन सभी उदाहरणों में कथा के अनुरूप ब्रह्मा और विष्णु को शिवलिंग का आदि और अन्त न समझ पाने के कारण या तो लिंगोद्भव मूर्ति के दोनों पार्श्वों में शिव की प्रशंसा ओर स्तवन की मुद्रा में खड़ा दिखाया गया है या शिवलिंग में अचानक होने वाले विस्तार से भयभीत होकर उल्टे मुंह ऊपर से नीचे और फिर नीचे की ओर पुनः पारम्परिक लक्षणों एवं हंस और गरुड वाहनों के साथ चतुर्भुज रूप में आमूर्तित किया गया है। लिंग स्तम्भ के दक्षिण पार्श्व में हंस वाहन वाले ब्रह्मा लिंग की उत्पत्ति का पता लगाने के लिए आकाश मार्ग की ओर जाते दिखाये गये हैं, जबकि वाम पार्श्व में लिंग की गहराई का पता लगाने के लिए नृवाराह रूप में विष्णु को नीचे की ओर जाता हुआ दिखाया गया है। आदि और अन्त का पता लगाने में असमर्थ होने पर ब्रह्मा और विष्णु को पुनः नमस्कार मुद्रा में शिव की श्रेष्ठता स्वीकार करते हुए भी दर्शाया गया है।

### सौम्य या शान्त मूर्तियां

#### उमा-महेश्वर

भारतीय परम्परा में शिव और शक्ति की संयुक्त या संघात मूर्ति के रूप में अर्द्धनारीश्वर स्वरूप के साथ ही उमा-महेश्वर स्वरूप भी पर्याप्त लोकप्रिय था। अर्द्धनारीश्वर स्वरूप के समान ही उमामहेश्वर स्वरूप को भी प्रकृति और पुरुष का मानवीय रूपान्तरण और उनके ऐक्य का सूचक माना जा सकता है।<sup>2</sup> उमा-महेश्वर मूर्ति के उकेरन की परम्परा कुषाणकाल से ही मिलती है, किन्तु सातवीं से तेरहवीं शती ई. के मध्य शिव का यह स्वरूप अखिल भारतीय स्तर पर सभी क्षेत्रों में सर्वाधिक लोकप्रिय रहा। अपराजितपृच्छा तथा रूपमन्दन के अनुसार चतुर्भुज शिव के दाहिने हाथों में मातुलिंग तथा त्रिशूल और बायां हाथ आलिंगन मुद्रा में सामान्यतः देवी के पयोधर का स्पर्श करते हुए होगा। उमा का दाहिना हाथ शिव के कन्धे पर स्थित होगा जबकि दूसरे में दर्पण दिखाया जायेगा।







पीठिका के नीचे गणेश कार्तिकेय तथा शृंगी (कंकाल रूप) की मूर्तियां बनी होंगी। उपर्युक्त शास्त्रीय परम्परा के अनुरूप ही उत्तर भारत के खजुराहो, भुवनेश्वर, वाराणसी (कर्दमेश्वर मंदिर, 12वीं शती ई०) तथा अन्तः स्थलों से प्राप्त उमा-महेश्वर मूर्तियों में उमा-महेश्वर को सामान्य पीठिका के स्थान पर नन्दी पीठ पर आसीन निरूपित किया गया है।

दक्षिण भारतीय शिल्पशास्त्रों में भद्रपीठ पर ललितासीन चतुर्भुज शिव के करों में परशु, मृग, अभय-मुद्रा, तथा वरद मुद्रा का उल्लेख मिलता है। उमा के दाहिने हाथ में पद्म होगा तथा बाया हाथ सिंह-कर्णमुद्रा में या पीठिका पर स्थित होगा। इस प्रकार दक्षिण भारतीय परम्परा में शिव-पार्वती के आलिंग स्वरूप का अनुल्लेख है। इसी कारण दक्षिण भारत में आलिंगन मूर्तियां नहीं बनी।

उमामहेश्वर मूर्तियों में पार्वती सदा शिव की ओर देखती हुई निरूपित हैं<sup>3</sup> जबकि शिव की दृष्टि कभी पार्वती की ओर और कभी सामने की ओर होती है। उत्तर भारत से प्राप्त लगभग सभी मध्यकालीन उदाहरणों में परिकर में ब्रह्मा और विष्णु तथा पीठिका पर मोदकधारी गणेश और मयूर वाहन वाले शूलधारी कार्तिकेय एवं शृंगी ऋषि तथा परिकर में सबसे ऊपर पांच शिवलिंग दिखाये गये हैं। तात्पर्य यह कि विभिन्न स्थलों की उमा-महेश्वर मूर्तियों में लक्षण की दृष्टि से विविधता के स्थान पर एकरूपता अधिक स्पष्ट है। केवल परिकर के अलंकरणों या परिकर की आकृतियों एवं उनके संयोजन के सन्दर्भ में ही अन्तर दिखायी देता है, उदाहरण के लिए खजुराहो, भुवनेश्वर, हिंगलाजगढ, ओसिया, वाराणसी तथा अन्य स्थलों की मूर्तियों में उमा-महेश्वरको या तो नन्दी पीठ पर आसीन या उनकी आकृतियों के नीचे उनके वाहनों को दिखाया गया है।

नेपाल, इण्डोनेशिया जैसे दक्षिण तथा दक्षिण पूर्व एशिया के देशों में भी उपयुक्त लक्षणों वाली उमा-महेश्वर मूर्तियां प्रमचूर संख्या में बनी हैं।<sup>4</sup>







## लकुलीश

शैव धर्म की पाशपुपत शाखा के प्रवर्तक लकुलीश को शिञ्जव का 28वां अवतार माना गया है। लकुलीश की मूर्तियों का निर्माण गुप्तकाल में प्रारम्भ हुआ। मध्यकाल में लकुलीश की स्वतन्त्र मूर्तियां मुख्यतः पश्चिम और पूर्वी भारत में प्रचूर मात्रा में बनीं। लकुलीश की मध्यकालीन चतुर्भुज मूर्तियों में दो हाथ सामान्यतः धर्मचक्रप्रवर्तन-मुद्रा में तथा शेष दो हाथ अक्षमाला और त्रिशूल से युक्त है। उनका विशिष्ट आयुध लकुट उनके दाहिने पार्श्व में देखा जा सकता है। लकुलीश मूर्तियों में शिव सामान्यतः ऊर्ध्वलिंग है। (एलीफैण्टा)।

भुवनेश्वर में लकुलीश की सर्वाधिक मूर्तियां मिली हैं, जिनके कुल 11 उदाहरण हैं। एलोरा में लकुलीश की कुल 5 मूर्तियां हैं।

## दक्षिणामूर्ति (महायोगेश्वर)

शिव योग, व्याख्यान, संगीत तथा अन्य शस्त्रों के महान ज्ञात और आचार्य माने गये हैं। शिव का यह स्वरूप विष्णु के नारायण स्वरूप का स्मरण कराता है। वास्तव में यह शिव के मूर्त रूपों का समूह रहा है। शिव द्वारा देव एवं महर्षियों को दक्षिण की ओर मुख करके धर्म और ज्ञान का उपदेश देने के कारण प्रस्तुत स्वरूप की मूर्तियों को दक्षिणाभिमुख कहा गया। जिन्हें ज्ञान-दक्षिणामूर्ति, योग-दक्षिणामूर्ति, वीणाधर-दक्षिणामूर्ति तथा व्याख्यान-दक्षिणामूर्ति कहा गया। इस स्वरूप में शिव एकाकी और सामान्यतः ध्यान-मुद्रा में विराजमान दिखाये जाते हैं। गुप्तकाल से ही दक्षिणामूर्ति स्वरूप की मूर्तियां बनने लगी जिसका एक मनोज्ञ उदाहरण वाराणसी के तिलभाण्डेश्वर मन्दिर में देखा जा सकता है।<sup>5</sup> कांचीपुरम के कैलाश मंदिर में शिव के याग और व्याख्यान दोनों ही स्वरूपों की दक्षिणामूर्तियां उकेरी हैं। व्याख्यान-दक्षिणामूर्ति में वटवृक्ष के नीचे आसीन शिव के







एक हाथ में अक्षमाला है तथा दूसरे से व्याख्यान मुद्रा प्रदर्शित है। सिंहासन के नीचे साधु एवं देवताओं को उपदेश सुनते हुए दिखाया गया है।

शिव की भिक्षाटन, कंकाल एवं सामस्कंद मूर्तियों के समान ही दक्षिणामूर्ति स्वरूप की मूर्तियां भी मध्यकाल में उत्तर भारत की अपेक्षा दक्षिण भारत में अधिक लोकप्रिय थी। उत्तर भारत में जो उदाहरण मिलते हैं वे वीणाधर-शिव स्वरूप से सम्बन्धित हैं। चतुर्भुज शिव के दो हाथों में वीणा होगी तथा अन्य हाथों में अक्षमाला और अग्नि या सर्प।

### कल्याण-सुन्दर (या पार्वती -परिणय)

कल्याण-सुन्दर मूर्ति शिव-पार्वती के विवाह प्रसंग से संबंधित है जिसे वस्तुतः पार्वती-परिणय मूर्ति कहा जाना चाहिए। ऐसी मूर्तियों के लिए कल्याण-सुन्दर नाम न तो कालिदास के कुमारसंभव में वर्णित विवाह प्रसंग में मिलता है और न ही किसी शिल्पशास्त्र में। यह नाम वस्तुतः शिव और पार्वती के क्रमशः कल्याण और सुन्दर भाव को व्यक्त करता है। वर के रूप में शिव कल्याण के सूचक और वधू के रूप में पार्वती सौन्दर्य का मूर्तिमान रूप हैं। कल्याण-सुन्दर मूर्तियों का शिल्पांकन लगभग छठी-सातवीं शती ई. में आरम्भ हुआ। मध्यकाल में उत्तर भार के विभिन्न क्षेत्रों में इस स्वरूप की प्रभूत मूर्तियां बनीं। दक्षिण भारत में चोल धातु मूर्तियों में इस स्वयं का सांकेतिक निरूपण हुआ है।<sup>6</sup> तेरहवीं शती ई. के बाद विजयनगर और नायकों के काल की परम्परिक कल्याण-सुन्दर मूर्तियों के उदाहरण तंजौर एवं गंगैकोण्डचोलपुरम् के बृहदीश्वर मंदिरों तथा हलेबिड के होयसल मंदिर पर है।

कल्याण-सुन्दर मूर्ति में केन्द्र में शिव और पार्वती की आकृतियां होती हैं। वर के रूप में शिव विभिन्न आभूषणों से सज्जित एवं किंचित नम्र ग्रीवा पार्वती की ओर देखते हुए आकारित होते हैं। पार्वती के मुख और नेत्र से नववधू के







संकोच का भाव दर्शाया जाता है। कल्याण-सुन्दर मूर्तियों में शिव-पार्वती को सर्वदा स्थानक रूप में दिखाया गया है जो वस्तुतः सप्तपदी की स्थिति का सूचक है। इस स्वरूप की उत्कृष्टतम मूर्तियां कन्नौज (प्रतिहार कालीन), एटा (ल० 10वीं शती ई प्रतिहार कालीन, सम्प्रति भारत कला भवन, वाराणसी, क्रमांक 175), एलीफैंटा, ऐलोरा, भुवनेश्वर, खजुराहो एवं हलेबिड आदि स्थलों से मिली हैं। परम्परानुसार विवाह की समाप्ति के बाद ही स्त्री अर्धांगनी के रूप में बाययीं ओर स्थानग्रहण करने की अधिकारिणी होती है। शिव और पार्वती के मध्य पुरोहहित के रूप में ब्रह्मा और विवाहवेदी के रूप में स्वयं अग्नि का अंकन मिलता है। कुछ उदाहरणों (भुवनेश्वर तथा एटा)में गणेश एवं कार्तिकेय की आकृतियां भी उत्कीर्ण हैं जो परम्परा के प्रतिकूल हैं, क्योंकि तारकासुर के संहार हेतु कार्तिकेय के जन्म के निमित्त ही शिव-पार्वती के विवाह प्रसंग का शास्त्रों में उल्लेख हुआ है। ऐलोरा की गुफा न. 16 की एक मूर्ति में पार्वती को बायीं ओर दिखाया गया है। जिसे कलाकार की भूल के स्थान पर सप्तपदी की प्रक्रिया में चलायमान पार्वती की परिक्रमा की स्थिति का संकेत माना जा सकता है।

मध्य में शिव तथा पार्वती पूर्वाभिमुख खड़े होंगे और ष्णु तथा उनकी दो पत्नियां (भूदेवी और श्रीदेवी) उमा के कन्यादान के लिए उपस्थित होंगी। उमा के पार्श्व में खड़ी श्री तथा भूदेवी उनकी कटि का इस रूप में स्पर्श कर रही होंगी मानों वे वधू को उसके स्वामी को समर्पित कर रही हैं। शिव तथा पार्वती के मध्य चतुर्भुज विष्णु दिखाये जायेंगे। किरीटधारी विष्णु के नीचे के हाथों में मंगल-घट होगा जिससे वह जल गिरा रहे होंगे जबकि ऊपर के हाथों में चक्र और शंख प्रदर्शित होंगे। याकुण्ड के सामने उत्तराभिमुख ब्रह्मा पद्मासन में निरूपित होंगे। चतुर्भुज ब्रह्मा चतुर्मुख एवं जटामुकुट और यज्ञोपवीतधारी होंगे। ब्रह्मा के ऊर्ध्व करों में अक्षमाला और कमण्डलु तथा अधःकरों में स्त्रुक और स्त्रुवा होगा। स्त्रुक और स्त्रुवा से ब्रह्मा वेदी-कुण्ड में आहुति दे रहे होंगे। शिव-पार्वती के पार्श्वों में







अष्ट-विश्वेश्वर, अष्ट-दिक्पाल, सिद्ध, यक्ष, ऋषि, गन्धर्व, मातृकाओं, नवग्रहों तथा अन्य देवताओं की शक्ति सहित आकृतियां बनी होंगी। सभी आकृतियां अलौकिक मांगलिक अवसर के अनुरूप प्रसन्न वदन होगी। शिव के सामने का दाहिना हाथ पाणिग्रहण की मुद्रा में पार्वती की हथेली पकड़े हुए होगा जबकि बायें से वरद मुद्रा व्यक्त होगी। पार्वती के बायें हाथ में पद्म होगा जबकि दाहिना हाथ शिव की हथेली पर रखा होगा (पाणिग्रहण मुद्रा)।

सप्तपदी के क्षणों को रूपायित करने वाली प्रस्तुत मूर्ति में वामनपुराण के विवरण के अनुरूप पार्वती की सखी मालिनी को शिव का पैर पकड़े दिखाया गया है। अन्य लक्षण पूर्ववत् है।

इन मूर्तियों में पूर्वोक्त सामान्य विशेषताओं के अतिरिक्त पार्वती के समीप पिता हिमवान और माता मैना की आकृतियां पुष्प और फल लिए खड़ी हैं।

### गंगाधर

कथा के अनुसार ब्रह्मा ने अपने कमण्डलु से गांवां को प्रवाहित किया। गंगा के तीव्र वेग और प्रवाह को संयत रखने के लिए भगीरथ की तपस्या पर शिव ने गंगा को अपनी जटा में धारण किया। शिव की जटा से गंगा पृथ्वी पर आयी। शिव का यही स्वरूप गंगाधर कहलाया।<sup>7</sup>

गंगाधर मूर्ति में शिव का दाहिना पैर सीधा पृथ्वी पर स्थित और बायां किंचित मुड़ा हुआ होगा। शिव का दाहिना एक हाथ उमा की टुड्डी का स्पर्श करता और बायां जटा के पास तक उठा हुआ या जटा को पकड़े होगा। जटा में गंगा की आकृति बनी होगी। नीचे में वामकर में मृग होगा। बायीं ओर ऋषियों सहित भगीरथ शिव की प्रशंसा करते आकारित होंगे।







आठवीं शती ई. से गंगाधर मूर्तियों में शिव के समीप पार्वती का अंकन भी प्रारम्भ हुआ जिन्हें शिव द्वारा गंगा को धारण करने पर अप्रसन्न मुद्रा में दिखाया गया है। ऐसी मूर्तियां कांचीपुरम के कैलाशनाथ एवं भुवनेश्वर के मुक्तेश्वर मंदिरों तथा एलिफैंटा और एलोरा की गुफाओं में दृष्टव्य है।

इस विलक्षण मूर्ति में शिव के मस्तक के ऊपर उकेरी त्रिमुख नारी आकृति के माध्यम से गंगा के त्रिपथगा स्वरूप को अभिव्यक्त किया गया है। जो गंगा, यमुना और सरस्वती तीनों की उपस्थिति का मान कराता है।

### अनुग्रह मूर्तियां

शिव के विभिन्न अनुग्रह स्वरूपों में सृष्टि के कल्याण का भाग अलग अलग स्तरों पर अभिव्यक्त हुआ है। ययमान्तक स्वरूप को भक्त मार्कण्डेय पर अनुग्रह की परिणति भी माना जा सकता है। काम को भस्म करने के बाद रति की प्रार्थना तथा सृष्टि कार्य में काम की अनिवार्यता के कारण अनंग रूप में काम को जीवनदान भी शिव की कृपा का ही सूचक है। संहार के बाद अंधकासुर को अपना प्रमुख गण बनाना भी इसी का उदाहरण है। इसी प्रकार गंगाधर स्वरूप में पृथ्वी पर गंगा के बवतरण में शिव का योगदान जगत के कल्याण के भाव से प्रेरित रहा है। वस्तुतः भागीरथी की तपस्या पर प्रसन्न होकर शिवन ने उन पर अनुग्रह किया था।

उत्तर भारत की अपेक्षा दक्षिण भारत में शिव का अनुग्रह स्वरूप अधिक लोकप्रिय था। खजुराहो जैसे प्रमुख कला केन्द्र पर अनुग्रह मूर्ति की अनुपलब्धता इस दृष्टि से ध्यातव्य है। उत्तर भारत में मुख्यतः अर्जुनानुग्रह और कभी-कभी रावणानुग्रह स्वरूपों की मूर्तियां मिली हैं। सर्वप्रथम गुप्तकाल में इन स्वरूपों को







रूपायित किया गया। कुछ प्रमुख अनुग्रह मूर्ति स्वरूपों की विस्तृत चर्चा भी यहां अभीष्ट है।

### रावणानुग्रह

अनुग्रह स्वरूपों में शिल्प में रावणानुग्रह स्वरूप लोकप्रिय था। जिसके उदाहरण ल. छठी शताब्दी ई. से सभी क्षेत्रों में मिलते हैं। एलोरा में रावणानुग्रह स्वयं की सर्वाधिक मूर्तियां हैं जिनके कुल 8 उदाहरण गुफा सं० 14, 15, 16 (कैलाश मन्दिर), 21 और 29 में हैं। एलोरा के कैलाश मन्दिर की रावणानुग्रह मूर्ति शिल्पशास्त्रीय लक्षणों तथा कलात्मक स्तरों पर न केवल रावणानुग्रह स्वरूप की सर्वश्रेष्ठ मूर्ति है वरन् भारतीय मूर्तिकला के श्रेष्ठतम उदाहरणों में एक है। ज्ञातव्य है कि शिव के अन्य अनुग्रह स्वरूपों की मूर्तियों (किरातार्जुन के अतिरिक्त) का शिल्पांकन मुख्यतः दक्षिण भारत में ही लोकप्रिय था।

शिवपुराण<sup>8</sup> के अनुसार शिव एक बार मानसरोवर के समीप अपने अन्तपुर में पार्वती के साथ विश्राम कर रहे थे, उसी समय उनका अनन्य भक्त रावण शिव से मिलने आया। द्वारपालों द्वारा प्रवेश से रोके जाने पर रावण ने आवेश और दम्भ के कारण कैलाश पर्वत को ही अपने साथ ले जाने का निश्चय कियया। इसी क्रम में उसने कैलाश पर्वत को अपने स्थान से हिलाने का प्रयास किया। कैलाश पर्वत के किंचित हिलने मात्र से सर्वज्ञ शिव को सम्पूर्ण घटना का आभास हो गया। शिव ने शान्त और सहज भाव से पृथ्वी पर पैर का एक अंगूठा रख दिया जिसके बाद हर संभव प्रयास के बाद भी रावण कैलाश पर्वत को किंचित मात्र नहीं हिला सका। अनन्त में अपनी पराजय स्वीकार करते हुए उसने एक हजार वर्षों तक अराधना कर शिव को प्रसन्न किया और उनसे खड्ग प्राप्त किया। एक अन्य कथा (रामायण 16.1.38) के अनुसार रावण अपने पुष्पक विमान







से जा रहा था। शिव पार्वती के विहार स्थल के समीप शिवगण नन्दिकेश्वर द्वारा रोके जाने पर रुष्ट रावण ने कैलाश पर्वत को उठाने की असफल चेष्टा की।

उपर्युक्त कथानक की पृष्ठभूमि में रावणानुग्रह स्वरूप की मूर्तियां बनीं जिनमें पर्वत शिखर पर शिव और पार्वती को विजरामान दिखाया गया है। शिव पार्वती का आलिंगन करते हुए दिखाये गये हैं या पर्वत के हिलने के कारण पार्वती को भयवश सिमट कर शिव के समीप आते हुए दिखाया गया है। समीप ही विभिन्न गणों और अनुचरों को भयवश इधर-उधर भागते हुए किन्तु शिव को शान्त और अविचलित तथा दाहिने पैर से पर्वत को हल्का सा दबाते हुए दर्शाया गया है। पर्वत के नीचे दस मुखों और बीस हाथों वाले रावण की वीरासन में अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगाकर पर्वत को हिलाने की असफल चेष्टा करते हुए निरूपित किया गया है। इन मूर्तियों में सामान्यतः शिव चतुर्भुज है और रावण के समक्ष दर्शन के केवल पांच मुख ही देखे जा सकते हैं। पर्वत को हिलाने की चेष्टा में संलग्न होने के कारण रावण की आकृति को पृष्ठ भाग से दिखाया गया है।

### किरातार्जुन (या अर्जुनानुग्रह) मूर्ति

महाभारत तथा अन्य परवर्ती ग्रन्थों में वर्णित कथा के अनुसार अर्जुन ने शिव से पाशुपतास्त्र प्राप्त करने के लिए उनकी कठिन तपस्या की थी। तपस्या से प्रसन्न होकर शिव, शौर्य परीक्षा हेतु, किरात वेश में अर्जुन के पास आये थे। शूकर के शिकार के विवाद पर अर्जुन तथा किरातवेशधारी शिव के मध्य घोर संग्राम हुआ जिसमें अन्ततः अर्जुन परास्त होकर शिव को पहचानने में सफल हुए।<sup>10</sup> अर्जुन के शौर्य पर प्रसन्न होकर शिव ने उन्हें पाशुपतास्त्र प्रदान किया। शिव के किरातार्जुन स्वरूप का शिल्पांकन गुप्तकाल के बाद प्रारम्भ हुआ। मुख्यतः महाभारत के कथा दृश्यों से सम्बन्धित अंकों में इस स्वरूप में सर्वाधिक







उदाहरण मिलते हैं। इस स्वरूप में दो रूपों में शिव को दिखाया गया है, प्रथम रूप में किरात (शिव) और अर्जुन के बीच युद्ध और शिञ्जव द्वारा प्रसन्न होकर अर्जुन को पाशपुत अस्त्र देने का भाव मूर्तियों में व्यक्त हुआ है। दूसरे रूप की मूर्तियों में त्रिनेत्र और चतुर्भुज शिव को समभंग में धनुष, बाण, परशु एवं मृग से युक्त दिखाया गया है।<sup>9</sup> शिव के दक्षिण पार्श्व में अंजलि मुद्रा में अर्जुन तथा वाम पार्श्व में गौरी का निरूपण किया गया है।

### चण्डेशानुग्रह मूर्ति

इस मूर्ति के सम्बन्ध में प्रापत कथा के अनुसार चोल देश में विचारदर्शमन् नाम का एक ब्राह्मण पुत्र था जो शिव का अनन्य भक्त था। एक बार पिता यज्ञदत्त ने विचारशर्मन द्वारा पूजित बालू से निर्मित शिवलिंग पर पैर से आघात कर दिया। पिता के इस व्यवहार के क्रुद्ध होकर विचारशर्मन ने पिता का वह पैर ही काट डाला जिससे उसने शिवलिंग पर प्रहार किया था। इस अनन्य भक्ति से प्रसन्न होकर शिव स्वयं प्रकट हुए और उन्होंने उस ब्राह्मण पुत्र को चण्डेश की उपाधि प्रदान कर अपने गणों में प्रधान स्थान दिया। शिव ने अपने हाथों से उसे वस्त्र एवं मुकुट भी प्रदान किया और उसके मस्तक को पुष्पों की माला से अलंकृत किया। अशुमद्भेदागम के अनुसार उमासहित मूर्ति के समान इस स्वरूप में भी शिव पार्वती के साथ विराजमान होंगे। शिव का एक हाथ वरद-मुद्रा में होगा और दूसरा चण्डेश के मस्तक पर स्थित होगा जिसे अंजलि मुद्रा में शिव के आसन के समक्ष दिखाया जायेगा।

चण्डेशानुग्रह स्वरूप की मूर्तियाँ केवल तमिल क्षेत्र से ही मिली हैं जिनके उदाहरण कांचीपुरम के कैलाशनाथ तथा गंगैकोण्डचोलपुरम के बृहदीश्वर मन्दिरों पर देखे जा सकते हैं।





137731



## संहार या उग्र प्रतिमा

लिंग-विग्रह, उमा-महेश्वर एवं नटेश स्वरूपों के बाद भारतीय कला में शिव संहार या उग्र स्वरूपों की मूर्तियां ही सर्वाधिक संख्या में उकेरी गयी। इन स्वरूपों में अन्धकारि, गजान्तक, यमान्तक, कामान्तक, त्रिपुरान्तक, शरभेष और ब्रह्माशिरश्छेदक स्वरूप मुख्य हैं। संहार मूर्ति स्वरूपों में शिव को कभी असुरों का संहार (अन्धकारि, गजान्तक, त्रिपुरान्तक) और कभी देवताओं को दण्डित (यमान्तक, कामान्तक, ब्रह्माशिरश्छेदक और शरभेष) करते हुए दिखाया गया है।

मयमत, अशुंमद्भेदागम, कामिकागम, सुप्रभेदागम एवं शिल्परत्न जैसे दक्षिण भारतीय ग्रन्थों में संहार मूर्तियों का विस्तृत निरूपण मिलता है जिसकी पृष्ठभूमि में दक्षिण भारत के पुरास्थलों पर शिव की संहार मूर्तियों का अनेकत्र उत्कीर्णन हुआ है।<sup>11</sup>

गुप्तकाल तक त्रिपुरान्तक, अन्धकारि, गजान्तक, यमान्तक और कामान्तक स्वरूपों के साहित्यिक सन्दर्भ मिलने लगते हैं, किन्तु मूर्ति केवल गजान्तक स्वरूप की ही मिली है। वस्तुतः छठी-सातवीं शती ई. एवं बाद की शताब्दियों में विभिन्न क्षेत्रों में शिव मंदिरों पर संहार मूर्तियां प्रचूरता से उकेरी गयी।

दक्षिण भारत के शिल्पशास्त्रीय परम्परा के आगम ग्रन्थों में विभिन्न संहार स्वरूपों के प्रतिमानिरूपण सम्बन्धी उल्लेख विस्तार से वर्णित हैं।

संहार मूर्तियों में शिव सामान्यतः त्रिनेत्र (कामान्तक, यमान्तक, त्रिपुरान्तक) और भयंकर दर्शन वाले तथा सर्प आदि के आभूषणों से सज्जित दिखाये जाते हैं। शिव सामान्यतः दो से दश हाथों वाले दिखाये गये हैं। केवल अघोर रूप में शिव को 32 हाथों वाला बताया गया है। शिव शरभेष स्वरूप के अतिरिक्त सर्वदा दो पैरों वाले हैं जिनमें अलग अलग स्वरूपों में पैरों की स्थिति अलग-अलग







दिखाई गयी है। यमान्तक मूर्ति में शिव का एक पैर शिवलिंग में छिपा और दूसरा यम पर प्रहार की मुद्रा में उठा होता है। त्रिपुरान्तक स्वरूप में शिव के पैरों का निचला भाग सामान्यतः रथ में छिपा होता है और उन्हें आलीढ मुद्रा में रूपायित किया जाता है। कामान्तक स्वरूप में शिव योगी के समान ध्यान-मुद्रा में बैठे होते हैं।<sup>12</sup> शरभेष रूप में शरीर का कुछ भाग मनुष्य से मिलता जुलता और कुछ सिंह जैसा दिखाया जाता है। इस स्वरूप में शिव आठ पैरों वाले बताये गये हैं। बटुक भैरव एवं कंकाल मूर्तियों में शिव नग्न होते हैं। जबकि अन्य रूपों में सामान्यतः उन्हें व्याघ्र चर्म पहले दर्शाया गया है। जालन्धर एवं भिक्षाटन मूर्तियों में शिव के पैरों में चरण पादुका भी दिखायी गयी है।

### यमान्तक (या कलारि)

ग्रन्थों में वर्णित कथा के अनुसार एक बार शिव मृत्यु के देवता काल पर क्रोधित हुए और उनके वक्ष पर चरण से प्रहार कर उन्हें दण्डित किया। इसी रूप में शिव को कलारि या यमान्तक कहा गया। स्कन्द पुराण में वर्णित कथानक के अनुसार मार्कण्डेय नाम का ऋषि पुत्र शिव का अनन्य भक्त था जिसकी कुल आयु 16 वर्ष थी। जीवन के अन्तिम समय वह शिवलिंग के पास उसकी पूजा और वन्दना में लीन था। यमदूर शिवभक्त मार्कण्डेय की आत्मा को बांधने में असफल रहे तब स्वयं यमराज को मार्कण्डेय का प्राण लेने आना पड़ा जिससे वह 16 वर्ष की आयु से ज्यादा न जी सके। यमराज मार्कण्डेय की आत्मा को जब ले जाने लगे उसी समय शिवलिंग से शिव प्रकट हुए और उन्होंने यम के वक्षस्थल पर अपने चरण से प्रहार किया। यम ने तत्काल यह अनुभव किया कि उन्हें शिवभक्त के साथ सामान्य जनों जैसा व्यवहार नहीं करना चाहिए था। तत्पश्चात् यम ने शिव से क्षमा प्रार्थना की और शिव ने मार्कण्डेय को अमर होने और सर्वदा 16 वर्ष की आयु का रहने का वरदान दिया।<sup>13</sup>







अशुमद्भेदाम के अनुसार जटामुकुट से शोभित त्रिनेत्रधारी शिव यमान्तक रूप में चार या आठ हाथों वाले दिखाये जायेंगे और उनका दाहिना पैर पद्मपीठ पर स्थित होगा जबकि बायां यमराज के वक्ष पर आघात के लिए ऊपर उठा होगा। चतुर्भुज मूर्ति में शिव का शूलयुक्त एक हाथ यम पर प्रहार की मुद्रा में उठा होगा और दूसरे में परशु होगा। शिव के समक्ष ही करण्डमुकुटधारी द्विभुजी यमराज को अंजलि मुद्रा में भय से कांपते हुए और शिव से क्षमा याचना करते हुए निरूपित किया जायेगा। मार्कण्डेय लिंग के समीप ही पूजा के पुष्पों के साथ भयभीत मुद्रा में बैठे होंगे।

उत्तर भारत के किसी भी पुरास्थल से यमान्तक मूर्ति का कोई उदाहरण नहीं मिला है। दक्षिण भारत में सातवीं शती ई. से ही इस स्वरूप की मूर्तियां मिलने लगती हैं।

### त्रिपुरान्तक

विभिन्न ग्रन्थों (महाभारत, मत्स्यपुराण, शिवपुराण, लिंगपुराण) में वर्णित कथानक के अनुसार एक बार शिव ने ऐसे तीन असुरों का संहार किया था जो स्वर्ण, रज और लौह निर्मित तीन अलग अलग दुर्गों में निवास करते थे। ये असुर तारकासुर के तीन पुत्र (विद्युन्माली, तारकाक्ष, कमलाक्ष) थे जिन्हें ब्रह्मा से यह वरदान प्राप्त था कि वे तीन अभेद्य दुर्गों का निर्माण करेंगे, ये तीनों दुर्ग एक हजार वर्ष बाद एक में मिल जायेंगे और जब एक ही बाण से तीनों दुर्गों को भेदा जायेगा तभी उनका संहार होगा। असुरों के स्थपित माया ने इन दुर्गों का निर्माण किया था। पहल स्वर्ण निर्मित दुर्ग में स्वर्ग में, दूसरा रज निर्मित दुर्ग अनतरिक्ष और तीसरा लौह निर्मित दुर्ग पृथ्वी पर स्थित था। सभी देवताओं ने उन असुरों के अत्याचार से त्रस्त होकर शिव से उनके संहार की प्रार्थना की जिसके लिए शिव ने देवताओं से उनकी शक्तियां मांगी। विभिन्न देवताओं की शक्तियों से







युक्त महादेव ने एक ही बाण से तीन दुर्गों को भेदकर असुरों का संहार किया और त्रिपुरारी कहलाये। त्रिपुरान्तक मूर्तियों में शास्त्रीय विधान के अनुरूप शिव को सामान्यतः रथारूढ और धनुषबाण से युक्त एवं शरसंधान की मुद्रा में निरूपित किया गया है पुराणों के अनुसार विश्वकर्मा ने देवमय ऐसे रथ का निर्माण किया जिसके दो चक्र सूर्य और चन्द्रमा बने। सारथी के रूप में ब्रह्मा को निरूपित किया गया।

त्रिपुरान्तक स्वरूप का शिल्पांकन लगभग सातवीं शती ई. से प्रारम्भ हुआ जिसके उदाहरण मुख्यतः दक्षिण भारत में मिले हैं। यह सर्वथा आश्चर्यजनक है कि भुवनेश्वर जैसे महत्वपूर्ण शैव कला केन्द्र पर इस स्वरूप की एक भी मूर्ति नहीं बनी। इस स्वरूप की सर्वाधिक मूर्तियाँ एलोरा की गुफाओं तथा चोल मन्दिरों (तंजौर एवं गंगैकोण्डचोलपुरम्) के बृहदीश्वर और दारासुरम् के ऐरावतेश्वर मन्दिरों से मिली है। शिव के पैरों के नीचे अपस्मार पुरुष का अंकन हुआ है।

शिव के रथ के दो पहिए सूर्य और चन्द्र हैं जबकि रथ को खींचने वाले चार अश्व चार वेदों के सूचक हैं।

### अन्धकारि

कथाओं के अनुसार सारांशतः शिव के स्वेद से उत्पन्न अन्धक नाम के असुर ने ब्रह्मा से मनोवांछित वरदान प्राप्त किया था। ब्रह्मा का यह भी वरदान था कि जब किसी नारी के प्रति असुर भाव के कारण उसकी काम भावना जागेगी तभी उसका नाश होगा।<sup>14</sup> उसके शरीर से गिरने वाली रक्त की प्रत्येक बूंद से असंख्य अंधकासुर उत्पन्न होने का वरदान भी उसे प्राप्त था। देवताओं और ऋषियों ने अभय प्राप्त अन्धकासुर से त्रस्त होकर असुर की मृत्यु के कारक के रूप में पार्वती का उपयोग किया और अन्धक के समक्ष पार्वती सौन्दर्य का वर्णन कर उसे पार्वती के पास जाने और परिणामतः शिव से अवश्यम्भावी युद्ध के







लिए प्रेरित किया। युद्ध में शिव ने त्रिशूल से प्रहार कर उसके शरीर का पूरी तरह से भेद डाला, किन्तु पृथ्वी पर गिरी रक्त की हर एक बूंद से सहस्रों अन्धक प्रकट होने लगे जो उसके समान ही पराक्रमी थे। तब शिव ने योगेश्वरी का आह्वान किया जो हाथ में कपालपात्र लेकर अन्धक के शरीर से गिरने वाली रक्त की बूंदों का उसमें संचित कर पीने लगी। रौद्र स्वरूपा देवी कंकाल रूप में थी। अंततः शिव ने त्रिशूल से अंधक का हृदय विदीर्ण कर उसका संहार किया।

इस स्वरूप में शिव प्रत्यालीढ मुद्रा में सामान्यतः अष्टभुज होते हैं और उनका मुख्य आयुध त्रिशूल होता है जिससे वे अन्धकासुर पर प्रहार करते हैं। उनके हाथों में युद्ध से संबंधित खड्ग, खेटक आदि आयुध होंगे। शिव अत्यन्त रौद्र रूप में युद्धरत दिखाये जायेंगे। भूमि पर स्थित योगेश्वरी के हाथ में कपाल-पात्र होना चाहिए जिसमें देवी अन्धकासुर के शरीर से निकले रक्त को संचित करती हुई होंगी।

अन्धकारि स्वरूप की मूर्तियों का निर्माण लगभग सातवीं शती ई. में प्रारम्भ हुआ। यह स्वरूप दक्षिण भारत की अपेक्षा उत्तर भारत में अधिक लोकप्रिय था। अन्धकारि मूर्तियों में पुराणों के विवरणों के अनुरूप शिव असुर आकृति को त्रिशूल या शूल पर उठाये दिखाये गये हैं। अधिकांशतः शिव के हाथों में कपालपात्र दिखाकर स्वयं शिव द्वारा ही रक्त की बूंदें संचित करने का भाव तथा रूधिर पान की कथा को अभिव्यक्त किया गया है।<sup>15</sup> किन्तु कभी-कभी कंकालस्वरूपा योगेश्वरी एवं सप्तमातृकाओं की आकृतियां भी इस निमित्त उकेरी गयीं। उत्तर भारत से प्राप्त अन्धकारि मूर्तियों में शिव के ऊपर के हाथों में गजचर्म दिखाकर गजान्तक मूर्ति के भाव को भी अन्धकारि स्वरूप के साथ समन्वित रूप में व्यक्त किया गया है।







एलिफैन्टा में शिव के गजान्तक और अन्धकारि स्वरूपों को संयुक्त रूप से दिखाया गया है। शिव के एक हाथ में खड्ग और दूसरे में कपाल-पात्र हैं। देवता अन्धक के शरीर से निकलने वाले रक्त को संचित कर रहे हैं। विद्ध अन्धक को शिव को त्रिशूल पर लटके हुए दिखाया गया है। कपाल, सर्प और अर्द्धचन्द्र से शोभित शिव के एक हाथ में घण्टा और दो हाथों में गजचर्म प्रदर्शित है। इस मूर्ति की विशेषता है कि यहां योगेश्वरी के स्थान पर स्वयं शिव को ही अन्धकासुर के रक्त को कपाल-पात्र में संचित करते दिखाया गया है। ज्ञातव्य है कि उत्तर भारत के विभिन्न स्थलों से प्राप्त अन्य कई मूर्तियों में भी एलिफैन्टा के समान ही गजान्तक और अन्धकारि स्वरूपों को संयुक्त रूप में अभिव्यक्त किया गया है। जिनके अनेक उदाहरण खजुराहो, टीकमगढ़, एलोरा, भुवनेश्वर, वाराणसी एवं भारत कला भवन, वाराणसी तथा सारनाथ संग्रहालय की मूर्तियों में देखे जा सकते हैं। भारत कला भवन, वाराणसी 11वीं शती ई. की मूर्ति में पूर्ववत् शिव अन्धकासुर को त्रिशूल पर उठाये हैं और उनके ऊपर के दो हाथों में गजचर्म है। विद्ध असुर आकृति के नीचे कंकाल स्वरूपा योगेश्वरी की आकृति भी बनी है।

शिव का पंचमुख होना संभवतः अन्धकारि स्वरूप में महादेव या सदाशिव स्वरूप की अभिव्यक्ति हो सकती है।

### गजान्तक

गजातक स्वरूप का प्रारम्भिक कूर्मपुराण (1.30. 12-18) में हुआ है जिसके अनुसार एक असुर ने कृतिवासेश्वर लिंग को नष्ट करने के लिए गज का रूप धारण किया था। शिव ने त्रिशूल से गजरूपी असुर का वध किया और साथ ही उसकी स्तुति से द्रवित होकर कृपापूर्वक उसके चर्म को धारण किया। इस कथात्मक पृष्ठभूमि में शिव के दो या अधिक हाथों में गजचर्म दिखाया गया। वराहपुराण में शिव के स्थान पर उनके प्रमुख गण वीरभद्र द्वारा गजरूपी असुर







के संहार का उल्लेख हुआ है। वीरभद्र ने ही गजचर्म की शिव को अर्पित किया था। शिवपुराण की कथा इन सबसे मित्र हैं जिसके अनुसार महिषासुर के संहार के बाद उसके पुत्र गजासुर ने कठिन तपस्या द्वारा ब्रह्मा से यह वरदान प्राप्त कर लिया कि काम के वश में होने वाले किसी भी पुरुष या स्त्री के हाथों उसका संहार नहीं होगा। फलतः कामजित शिव को इस असुर का संहार करना पड़ा। संहार के बाद शिव ने उसका चर्म भी धारण किया। गजान्तक स्वरूप के प्रतिमालक्षण केवल दक्षिण भारत के शिल्पशास्त्रों (अशुमद्भेदागम, कारणागम, सुप्रभेदागम, शिल्परत्न) में ही वर्णित है।

इस स्वरूप की मूर्तियां लगभग आठवीं शती ई में बननी प्रारम्भ हुई। दक्षिण भारत में इस स्वरूप की स्वतन्त्र मूर्तियां उकेरी गयी जबकि उत्तर भारत में सामान्यतः गजान्तक स्वरूप के भाव को अन्धकारि मूर्तियों में मिश्रित रूप में दो हाथों में गजचर्म दिखाकर व्यक्त किया गया। दक्षिण भारत में पल्लव, चालुक्य, चोल और होयसल कला केन्द्रों पर गजासुर-संहार स्वरूप की मूर्तियों का शिल्पांकन लोकप्रिय था जिनमें या तो चार या इससे अधिक हाथों वाले शिव को ऊपर के दो हाथों में गजचर्म धारण किये हुए गजचर्म लेकर चतुर्हस्त मुद्रा में नृत्यरत या गज के मस्तक पर दाहिना पैर रखकर असुर के छद्म रूप से गजचर्म को अलग करते हुए (तंजौर के वल्लुवूर नामक स्थान से प्राप्त चोल कांस्य मूर्ति) दिखाया गया है।

कांचीपुरम के कैलाशनाथ मंदिर की द्वादशभुज मूर्ति में शिव का एक पैर गज के मस्तक पर स्थित है जबकि ऊपर के दो हाथों में गजचर्म है। अन्य हाथों में त्रिशूल, परशु, घण्टा, सर्प और मुद्रा में प्रदर्शित है। वाम पार्श्व में शिव के इस उग्र स्वरूप से भयभीत पार्वती की आकृति उत्कीर्ण है।







खजुराहो के कन्दरिया महादेव एवं दूलादेव मंदिरों तथा स्थानीय संग्रहालय में दस से सोलह हाथों वाली कुछ गजान्तक प्रतिमायें हैं जिनमें सभी उदाहरणों में केवल गजचर्माधारी ऊपर के दो कर ही सुरक्षित हैं।

### कामान्तक

इस स्वरूप में महायोगी शिव ने ध्यान भंग किये जाने के कारण काम को दण्डित किया था। देवताओं के आग्रह पर शिव को विवाह के लिए प्रेरित करने के उद्देश्य से तथा तारकासुर के संहार के निमित्त कार्तिकेय के जन्म के लिए ही काम ने ध्यानमग्न शिव की तपस्या भंग करने का दुःसाहस किया था। फलस्वरूप शिव ने तीसरे नेत्र द्वारा काम को भस्म किया, किन्तु काम की पत्नी रति के आग्रह पर काम के बिना शरीर के बने रहने और प्रद्युम्न के रूप में पुनः जन्म लेने का वरदान भी दिया। प्रतिमाशास्त्रीय ग्रन्थों (दक्षिण भारत—पूर्वकारणागम, उत्तरकामिकागन) के अनुसार इस स्वरूप में शिव योग दक्षिणामूर्ति रूप में ध्यानमग्न और त्रिनेत्र होंगे जिनके समक्ष काम या मन्मथ की आकृति गिरी हुई दिखायी जायेगी। काम के हाथों में पांच पुष्पार और इक्षु धनु प्रदर्शित होगी।

### शरभेष

शिव के शरभेष स्वरूप की कथात्मक पृष्ठभूमि शिवपुराण एवं कुछ अन्य पुराणों में मिलती है। हिरण्यकशिपु के संहार के पश्चात् भी विष्णु ने अपने उग्र नरसिंह रूप का त्याग नहीं किया। देवताओं के आग्रह पर शिव ने शरभ रूप धारण कर विष्णु के नरसिंह रूप का अंत कर नरसिंह के चर्म को वस्त्र के रूप में धारण किया तब विष्णु अपने वास्तविक स्वरूप में प्रकट हुए। शिव के इस स्वरूप को शरभेष मूर्ति कहा गया जिसमें शिव एक काल्पनिक और विचित्र प्रकार के पशु के रूप में दिखाये गये। इस स्वरूप में एक और शैव और वैष्णव धर्मों की परस्परिक कटुता प्रतिध्वनित करता है। तो दूसरी ओर विश्व कल्याण के निमित्त







शरभेष रूप धारण करने का संकेत भी छपा है। ग्रन्थों में शिव के दो मुखों, दो पंखों तथा सिंह के समान आठ पैरों और तीक्ष्ण नखों और पुच्छ वाले पशु के रूप में निरूपण का विधान मिलता है। इस स्वरूप की बहुत कम मूर्तियां मिली हैं जिसका एक उदाहरण दारासुरम् के ऐरावतेश्वर मंदिर (12वीं शती ई. में) में है, जबकि दूसरा उदाहरण तंजौर जिले के त्रिभुवनम् स्थित शिव मंदिर के कांस्य प्रतिमा के रूप मिला है। सिंह मुख और शरीर वाले शरभेष को तीन पैरों तथा चार हाथों वाला दिखाया गया है।

### ब्रह्मशिरश्छेदक मूर्ति

विभिन्न पुराणों (वराह, कूर्म एवं शिवपुराण) के अनुसार ब्रह्मा द्वारा अपमानित होने पर और स्वयं को सृष्टिकर्ता बताने पर शिव ने ब्रह्मा का पांचवां मस्तक काट डाला। 12 वर्षों तक वह मस्तक शिव के हाथों से चिपका रहा। बाद में शिव ने इस कार्य के लिए भिक्षाटन रूप में प्रायश्चित भी किया।

### भैरव

शिवपुराण में भैरव को शिव का पूर्णरूप कहा गया है। विश्व के रक्षण भरण तथा भयंकर स्वरूप के कारण ही शिव को भैरव कहा गया है। भैरव स्वरूप का विस्तृत वर्णन विष्णुधर्मोत्तर पुराण के अनुसार भैरव लम्बोदर, गोल और नशीले नेत्रों वाले होंगे और उन दांत हरिदन्त के समान नुकीले होंगे। उनकी ग्रीवा में कपालों की और अन्य आभूषणों के साथ शिव सर्पों से भी अलंकृत होंगे। मैं मैं कई आयुध होंगे। उन्हें पार्वती को एक सर्प से भयभीत करते जायेगा।<sup>16</sup> रूपमण्डन में अष्टभुज भैरव का वाहन श्वान् बताया गया है, मैं भैरव के कई स्वरूपों का उल्लेख हुआ है। जिनमें बटुक, स्वर्णाकर्षण, रुरु, चण्ड, कपाल, भीषण, क्रोध, उन्मत, संहार और अतिरिक्तांग है। आगम ग्रन्थों में आठ आठ के







समूह में 64 भैरवों का नामोल्लेख इन आठ समूहों के नायक क्रमशः असितांग, रुरु, चण्ड, क्रोध, उन्मत और संहार भैरव हैं।

उत्तर भारत में शिव का बटुक भैरव स्वरूप विशेष लोकप्रिय शिव को नग्न, भयंकर दर्शन और बड़े नेत्रों वाला तथा हाथों में खड्ग और शूल और कपाल से युक्त खडाऊँ पहने एवं श्वान वाहन के साथ निरूपित किया गया है। दक्षिण भारतीय मूर्तियों में भयंकर दर्शन बड़े दांतों भैरव को श्वान् वाहन तथा करों में डमरु, पाश, त्रिशूल और कपाल दिखाया गया है। ज्वालामय केश सभी क्षेत्रों में देखने को मिलती है। पैरों में काष्ठ की पादुका और गले में कपाल-माला भी उत्तर भारतीय मूर्तियां विशेषताएं रही हैं।

भैरव मूर्तियां तस्तुतः शिव के अघोर स्वरूप को व्यक्त करती है।

### वीरभद्र

शिव के दक्ष प्रजाति के यज्ञ का विध्वंस वीरभद्र स्वरूप ही किया था। इस स्वरूप में चतुर्भुज शिव त्रिनेत्र, भयंकर, दर्शन, पार्श्वदत्त एवं विभिन्न आयुधों खड्ग, धनुष, बाण, वीणा, त्रिशूल से युक्त निरूपित किये गये हैं। इनके कुछ हाथ अभय, वरद और तर्जनी मुद्रा में भी होंगे। शिव के वाम पार्श्व में भद्रकाली और दक्षिण पार्श्व में दक्ष की आकृतियां बनी होंगी।

शिल्प में यह स्वरूप विशेष लोकप्रिय नहीं था। केवल एलौरा तथा कुछ अन्य स्थलों से ही इस स्वरूप के उदाहरण मिले हैं। वीरभद्र की कल्पना शिव के प्रमुख गण के रूप में की गयी। इस रूप में सप्त या आष्टामतृका फलकों पर सभी क्षेत्रों में उनका अंकन लोकप्रिय था। एलौरा तथा अन्य सभी स्थलों पर वीरभद्र मुख्यतः सप्तमातृका फलकों पर ही आमूर्तित हैं जिनमें साथ वीणा के







अतिरिक्त कभी-कभी वृषभ वाहन तथा एक हाथ में डमरू और दूसरे में परशु दिखाया गया है।

### जालनधर-वध मूर्ति

शिवपुराण की कथा के अनुसार शिव ने जालन्धर नाम के असुर का संहार किया था। युद्ध में विष्णु को पराजित करने के बाद जालन्धर अत्याचारी और देवद्रोही बन गया। फलतः उसका संहार अनिवार्य हो गया। देवतओं के प्रेरित करने पर नारद ने जालन्धर द्वारा पार्वती की इच्छा करने पर शिव द्वारा उसका संहार किया जा सके। शास्त्रीय विवरण के अनुसार इस रूप में रौद्र रूप वाले शिव के तीनों नेत्र क्रोध से प्रज्ज्वलित होंगे। द्विभुज शिव के हाथ में छत्र और दूसरे में कमण्डलु होगा और उसकी जटा में अर्द्धचन्द्र और गंगा की आकृतियाँ बनी होंगी। पादुका से युक्त शिव को मानों चलने की मुद्रा में दिखाया जायेगा। ज्ञातव्य है कि शिव ने समुद्र से प्राप्त सुदर्शन चक्र द्वारा जालन्धर का संहार किया था। जालन्धर वध मूर्तियों में असुर को शिव के समक्ष अंजलि मुद्रा में दिखाने का विधान है जिसके ऊपर सुदर्शन चक्र बना होगा।

### भिक्षाटन मूर्ति

वराहपुराण में शिव द्वारा उमा से भिक्षा की याचना करने की कथा वर्णित है। काम-दहन के बाद उमा की परीक्षा हेतु शिव याचक के रूप में तपस्यारत्न उमा के पास गये थे। इस स्वरूप की दो मूर्तियाँ कांचीपुरम के कैलाशमंदिर पर भी उकेरी गयी हैं। दोनों उदाहरणों में द्विभुज शिव को कष्ट पादुका पहने तथा कन्धे पर दण्ड रखे हुए दिखाया गया है। समीप ही पार्वती की आकृतियाँ हैं जो शिव के पार्व से भिक्षा याचना का शिल्पांकन हैं परमारकालीन मूर्ति हिंगलाजगढ से भी प्राप्त हुई हैं।







## सदाशिव मूर्ति

सदाशिव का शिव का एक विशिष्ट रूप है जिसका उल्लेख अपराजितपृच्छा, रूपमण्डन तथा अन्य शिलालेखों में मिलता है, अपराजितपृच्छा में पद्मासन पर विराजमान सदाशिव त्रिनेत्र, पंचमुख एवं दशभुज अभिलक्षित है। शिव के पांच मुख सद्योजात, वामदेव, अघोर, तत्पुरुष और ईशान स्वरूपों से संबंधित हैं।

सदाशिव स्वरूप की मूर्तियां लगभग दसवीं शती के बाद बननी प्रारम्भ हुई जिनके उदाहरण विभिन्न क्षेत्रों, विशेषतः उत्तर भारत से प्राप्त हुए हैं। बिहार और बंगाल में पाल और सेन काल में विशेष लोकप्रिय सदाशिव मूर्तियों में योगासन में विराजमान शिव यद्यपिद स हाथों वाले हैं किन्तु समक्ष दर्शन के कारण केवल तीन ही मुख दिखाये गये हैं। बारहवीं शती ई. की ऐसी एक मूर्ति भारतीय संग्रहालय, कलकत्ता में भी सुरक्षित है। इस मूर्ति में दो हाथ योग या ज्ञान की मुद्रा में हैं जबकि अन्य हाथों में त्रिशूल, शूल, वरद, पद्म और फल जैसी सामग्रियां प्रदर्शित हैं। मध्य भारत में विशेषतः खजुराहो के उदाहरणों में शिव का चतुष्पाद और षण्मुख होना तथा शीर्ष भाग में शिवलिंग का अंकन क्षेत्रीय विशेषता तथा किसी विशेष स्थानीय परम्परा से निर्दिष्ट प्रतीत होता था।

खजुराहो में चतुष्पाद एवं षण्मुख सदाशिव की दो विशिष्ट मूर्तियां क्रमशः कन्दरिया महादेव मन्दिर के महामण्डप की भीतरी भित्ति पर तथा पुरातत्व संग्रहालय, खजुराहो में देखी जा सकती है। दोनों ही मूर्तियां 11 वीं शती ई. है। खजुराहो की सदाशिव मूर्तियां प्रतिमालक्षण की दृष्टि से विलक्षण है जिनमें ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीनों देवताओं की विशेषताओं को संयुक्त रूप से प्रदर्शित किया गया है। दोनों उदाहरणों में चतुष्पाद सदाशिव की बारह भुजाओं में से अधिकांश खण्डित है। केवल अवशिष्ट एक हाथ में वरदाक्ष देखा जा सकता है। तीन-तीन







के समूह में एक के ऊपर एक कुल छः मुख बने हैं जिसके ऊपर लिंग का अंकन और जटाजूट के रूप में केश रचना वस्तुतः शिव के उस विशिष्ट स्वरूप को अभिव्यक्त करती है, जिसमें स्वयं शिव ही सृष्टि के तीनों कार्यों के कर्ता हैं शिव के चार पैरों में से दो योग मुद्रा में हैं जबकि दो अन्य पैर पीठिका पर नीचे लटके हुए हैं। पीठिका पर सदाशिव के लटके पैरों के मध्य ब्रह्मा की लघु आकृति बैठी है। पीठिका पर ही ब्रह्मा, विष्णु और शिव के वाहनों की आकृतियां भी बनी हैं। कन्दरिया महादेव मन्दिर की मूर्ति में परिकर के ऊपरी भाग में खजुराहो तथा अन्यत्र की मध्यकालीन मूर्तियों की भांति चतुर्भुज ब्रह्मा और विष्णु की लघु आकृतियां भी उत्कीर्ण हैं। खजुराहो की उपर्युक्त मूर्तियां किसी भी ज्ञात शास्त्रीय परम्परा से पुरी तरह मेल नहीं रखती क्योंकि किसी भी ग्रन्थ में सदाशिव के चतुष्पाद और षण्मुख स्वरूप का उल्लेख नहीं किया गया है।

### नटराज (नटेश)

भारतीय परम्परा में शिव को नृत्य शास्त्र प्रणेता बताया गया है। भरत के नाट्यशास्त्र में वर्णित सभी 108 प्रकार के नृत्यों को स्वयं शिव ने ही प्रस्तुत किया था जिसका सुन्दर उदाहरण तंजौर के बृहदीश्वर मंदिर के प्रथम तल की भीतरी दीवारों पर देखा जा सकता है। भारतीय शिल्प में शिव का नृत्य या नटराज स्वरूप गुप्तकाल के बाद सभी क्षेत्रों में सर्वाधिक लोकप्रिय रहा है। नटराज मूर्तियों के असंख्य उदाहरण विभिन्न कला केन्द्रों पर मिलते हैं जिनमें से कुछ उत्कृष्ट उदाहरण बादामी, भुवनेश्वर एलोरा, कांचीपुरम्, एलिफैण्टा, ओसियां, खजुराहो, मोढेरा, गंगैकोण्डचोलपुरम्, तंजौर, हलेबिड, बेलूर जैसे कला केन्द्रों पर हैं।

दक्षिण भारत का क्षेत्र विशेषतः चोल शासकों का काल नटराज मूर्तियों की दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध रहा है। चोल धातु शिल्पियों ने अपनी सम्पूर्ण कला







प्रतिभा नटराज मूर्तियों के निर्माण में प्रदर्शित की है। चोल काल में एक बड़ी संख्या में शिव की श्रेष्ठतम नटेश धातु मूर्तियों का निर्माण हुआ।

लगभग छठी शती ई. में शिव की नटेश मूर्तियों का निर्माण प्रारम्भ हुआ। नृत्य मूर्तियों की दृष्टि से दक्षिण भारत का क्षेत्र उत्तर भारत की अपेक्षा अधिक समृद्ध रहा है। यहां की मूर्तियां अपने में कई प्रतीकात्मक अर्थ भी समेटे हुए हैं। उत्तर भारत में शिव सामान्यतः पीठिका पर नृत्य करते हुए दिखाये गये हैं। उत्तर भारत में नन्दी को शिव की नृत्य का अवलोकन करते दिखाने की परम्परा भी रही है।







## सन्दर्भ ग्रन्थ एवं पादटिप्पणियां —

12. विष्णुधर्मोत्तर पुराण, 81/2-8
13. अपराजि पृच्छा, 219/1-9
14. महाभाष्य, 6/3/5
15. महाभारत, 12रु349/37
16. वही, 12/389/177
17. वायु पुराण, 98/71
18. वही, 1/3/16-22
19. शिवपुराण, 13/5
20. बृहत्संहिता, 58/30
21. शतपथ ब्राह्मण, 1/8
22. तैत्तिरीय सं०, 6,2,4,2
23. शतपथ ब्राह्मण, 14,1,2,11
24. वाल्मीकी रामायण, 3/45/13
25. वै. आ., पृ० 186
26. ई. एच. ई., पी. पी. 149-51
27. शिल्प रत्न, अ. 25/11







# विष्णु-प्रतिमाए







## विष्णु

ब्राह्मण धर्म के पांच प्रमुख सम्प्रदायों में विष्णु के उपासकों का वैष्णव सम्प्रदाय विशेष महत्वपूर्ण रहा है। महाकाव्यों और पुराणों के समय तक विष्णु की गणना त्रिदेवों में की जाने लगी और जगत की स्थिति या पालकर्ता के रूप में विष्णु एक प्रमुख देवता बन गये। वस्तुतः विष्णु की कल्पना वासुदेव-कृष्ण, वैदिक सौर देवता विष्णु एवं ब्राह्मणग्रन्थों के नारायण की संयुक्त अवधारणा की परिणति रही है। परमभागवत् गुप्त शासकों के संरक्षण और पुराणों की रचना के फलस्वरूप विष्णु की प्रतिष्ठा में अतिशय वृद्धि हुई और उनके विभिन्न स्वरूपों का विकास हुआ है।

अवतारवाद वैष्णव सम्प्रदाय का सर्वाधिक महत्वपूर्ण और रोचक अंग है। जिसके अनुसार विष्णु ने समय-समय पर पृथ्वी एवं साधुजनों के उद्धार के लिए तथा धर्म के उत्थान और दुष्टों के विनाश के लिए विभिन्न रूपों में पृथ्वी पर अवतार लिया।

लगभग दूसरी-पहली शती ई. पू. में वासुदेव-कृष्ण, संकर्षण (बलराम), प्रद्युम्न और अनिरुद्ध को मिलाकर चतुर्व्यूह (उद्भव) की कल्पना की गयी और उन्हें "पर" यानी ईश्वर के सर्वोच्च रूप का सूचक माना गया।<sup>1</sup> वृष्णिकुल के वासुदेव-कृष्ण के नायकत्व में मथुरा तथा आस-पास के क्षेत्रों में भक्ति या भागवत सम्प्रदाय ही विकसित होकर बाद में वैष्णव सम्प्रदाय के रूप में विख्यात हुआ। गुप्तोत्तर काल तक इन व्यूहों की संख्या 24 हो गयी। विष्णु की चतुर्विंशति मूर्तियों का उत्कीर्णन गुप्तकाल में प्रारम्भ हुआ जिसके कुछ प्रमुख मध्यकालीन उदाहरण ओसिया, खजुराहो एवं होयसल मंदिरों में उपलब्ध हैं। इनमें स्वतन्त्र रूप में या विष्णु मूर्तियों के परिकर में अथवा स्वतन्त्र पट्टों पर 24 आकृतियां उकेरी गयी है।







विष्णु की स्वतन्त्र मूर्तियों का निर्माण कृषाणकाल या कुछ पूर्व ई. पू. में मथुरा, मल्हार एवं मध्य प्रदेश के कुछ अन्य स्थलों पर प्रारम्भ हुआ। मध्यकाल में विष्णु के कई नवीन मूर्ति स्वरूपों की कल्पना की गयी और उनके लक्षण नियत हुए जिनके मूर्त उदाहरण विभिन्न पुरास्थलों पर देखे जा सकते हैं।

ग्रन्थों में विष्णु को सामान्यतः चतुर्भुज तथा श्रीवत्स या कौस्तुभमणि एवं किरीटमुकुट से शोभित और गरुड़ वाहन वाला बताया गया है। उनके करों में शंख, चक्र, गदा और पद्म दिखाने का विधान किया गया है।

अग्निपुराण में विष्णु के पार्श्वों में पद्मधारिणी श्री और वीणाधारिणी पुष्टि के निरूपण का विधान मिलता है। अन्य ग्रन्थों में भी यही लक्षण निरूपित है। मध्यकाल में विष्णु की चतुर्भुज एकल मूर्तियां ही सर्वाधिक संख्या में उत्कीर्ण हुईं जिनमें परम्परानुसार विष्णु गरुड़ वाहन (सामान्यतः मानव देह धारी) के साथ रूपायित हैं।<sup>2</sup> आसन या स्थानक विष्णु शंख, चक्र, गदा और पद्मधारी हैं। कभी-कभी पद्म के स्थान पर एक हाथ से अभय या वरद मुद्रा भी व्यक्त है। पूर्वी भारत तथा होयसल मन्दिरों की मूर्तियों में पार्श्वों में पद्मधारिणी श्रीदेवी और वीणाधारिणी सरस्वती की भी आकृतियां उकेरी हैं। विष्णु के अन्य किसी भी स्वरूप की तुलना में एकल मूर्तियां सभी क्षेत्रों में सर्वाधिक संख्या में उत्कीर्ण हुईं। एकल स्वरूप के बाद लक्ष्मी नारायण स्वरूप की ही सर्वाधिक मूर्तियां प्राप्त हुई हैं जिनमें पारम्परिक आयुधों से युक्त विष्णु का एक हाथ आलिंगन मुद्रा में दिखाया गया है। लक्ष्मी नारायण मूर्तियों के अनेक उदाहरण ओसियां, खजुराहो, भुवनेश्वर एवं होयसल मन्दिरों पर देखे जा सकते हैं।<sup>3</sup> वैसे लगभग सभी क्षेत्रों के मन्दिरों पर लक्ष्मी नारायण मूर्तियों के उदाहरण अनिवार्यतः उत्कीर्ण हैं।

विष्णु का नर नारायण स्वरूप महत्वपूर्ण होते हुए भी मूर्तियों में दुर्लभ है। सर्वप्रथम गुप्तकाल<sup>4</sup> में नर-नारायण स्वरूप की मूर्तियां बनीं जिनके उदाहरण







देवगढ के दशावतार मंदिर तथा अहिच्छत्र के मृणफलक पर मिलते हैं। नर-नारायण योग-मुद्रा में विराजमान होंगे। नारायण चतुर्भुज तथ पर द्विभुज रूपायित होंगे। दोनों के एक हाथ में अक्षमाला और शरीर पर मृगचर्म तथा मस्तक पर जटाभार एवं मुखमण्डल पर शान्त भाव प्रदर्शित होता है।

पूर्वमध्यकाल में केवल ओसियां से ही नर-नारायण मूर्ति का अकेला उदाहरण प्राप्त होता है जो हरिहर मन्दिर के कर्णप्रासाद की पूर्वी जंघा पर आमूर्तित है।<sup>4</sup> पूर्व उदाहरणों से भिन्न ओसियां की मूर्ति में नर-नारायण स्वस्तिक पाद-मुद्रा में त्रिभंग में खड़े और जटामुकुट से शोभित हैं।

### शेषशायी विष्णु

विष्णुधर्मोत्तर पुराण में विष्णु की शयन मूर्ति का उल्लेख पद्मनाभ नाम से हुआ है। इस ग्रन्थ के वर्णन के अनुसार पद्मनाभ जल के बीच पड़े शेषनाग की शय्या पर विश्राम करते हुए होंगे और उनका एक पैर लक्ष्मी की गोद में तथ दूसरा शेषनाग के फण पर स्थित होगा। चतुर्भुज विष्णु का एक हाथ जानु पर तथा दूसरा नाभि पर रखा होगा, तीसरा हाथ मस्तक के नीचे आधार रूप में तथा चौथा सन्तान पंजरी से युक्त होगा। उनके नाभि से उत्पन्न पद्म पर ब्रह्मा आसीन होंगे और पद्मनाल के समीप ही मधु और कैटभ असुरों की आकृतियां बनी होंगी। शेषनाग के समीप आयुध-पुरुषों के रूप में विष्णु के आयुध निरूपित होंगे। रूपमण्डन में विष्णु के मस्तक के समीप श्री और भू देवियों एवं पार्श्वों में मधु और कैटभ की आकृतियों तथा निधि के उत्कीर्णन का उल्लेख मिलता है। शेषशायी विष्णु की मूर्ति का प्रारम्भिक उदाहरण देवगढ के दशावतार मंदिर पर है।

### अवतार या विभव मूर्तियां

अवतारवाद के अन्तर्गत समय-समय पर विभिन्न युगों में अवतरित होने







वाले श्रेष्ठ पुरुषों एवं नायकों (राम, कृष्ण, बुद्ध एवं जैन तीर्थंकर ऋषभनाथ) तथा पूर्व में प्रजापति ब्रह्मा से सम्बन्धित मत्स्य, कूर्म और वराह अवतारों को ही कालान्तर में विष्णु के महत्त्व में वृद्धि के फलस्वरूप विष्णु के अवतारों के रूप में मान्यता मिली। विष्णु के इन अवतारों में सृष्टि के विकास का रहस्य भी छिपा माना गया है। विष्णु के अवतारों को पूर्ण (राम, कृष्ण), आवेश (परशुराम) और आंशिक (आयुध-पुरुष) इन तीन श्रेणियों में विभक्त किया गया है।<sup>5</sup>

विष्णु के अवतारों का सामूहिक या स्वतन्त्र निरूपण कुषाणकाल से पूर्व नहीं मिलता है। कुषाण काल में वराह, कृष्ण और बलराम की मूर्तियां बननी प्रारम्भ हुई। गुप्तकाल में वैष्णव धर्मावलम्बी शासकों के संरक्षण में अवतारवाद की धारणा का और अधिक विकास हुआ। गुप्तकाल के बाद सातवीं से तेरहवीं शती ई. के लगभग सभी क्षेत्रों में दशावतार फलकों तथा अवतार स्वरूपों की स्तम्भ मूर्तियां बनीं। स्वतन्त्र मूर्तियों में वराह, नरसिंह और वामन (त्रिविक्रम) स्वरूप में सर्वाधिक मूर्तियां उकेरी गयीं।

### मत्स्य अवतार

विभिन्न पुराणों के अनुसार महाप्रलय के समय वेदों के उद्धार के लिए विष्णु मत्स्य के रूप में अवतरित हुए। एक अन्य कथा के अनुसार प्रलय के समय विष्णु रूपी विशाल मत्स्य ने ही मानवजाति और मनु की रक्षा की थी। मूर्तियों में या तो पूर्ण मत्स्य दिखाया गया है या फिर मानव-मत्स्य-विग्रह रूप में अंकन हुआ है जिसमें ऊर्ध्व भाग नर का और निचला भाग मत्स्य या कूर्म का है।<sup>6</sup> पूर्ण मत्स्य रूप में दिखाये जाने पर मत्स्य के दोनों पार्श्वों में देव आकृतियां बनी होती हैं। इस स्वरूप की मूर्तियां अत्यल्प हैं।







खजुराहो की मूर्ति में मत्स्याकृति के ऊपर वेदों के प्रतीक के रूप में चार पुरुष आकृतियां भी उकेरी हैं। गुजरात से प्राप्त दसवीं एवं ग्यारहवीं शती ई. के मत्स्य एवं कूर्म-विग्रह की कुछ मूर्तियों में इन आकृतियों के ऊपर विष्णु के चक्र और शंख जैसे आयुध भी दिखाये गये हैं। खजुराहो के एक विशिष्ट उदाहरण में ध्यान-मुद्रा में विराजमान विष्णु के पैरों के नीचे मत्स्य की आकृति उकेरी है।<sup>7</sup>

### कूर्म अवतार

पुराणों एवं अन्य ग्रन्थों में वर्णित कथानकों के अनुसार देवताओं और असुरों के मध्य हुए युद्ध एवं उनके द्वारा किये जाने वाले समुद्र मन्थन के फलस्वरूप समुद्र से विभिन्न रत्न निकले थे। विष्णु ने देवताओं को मन्दराचल पर्वत की मथानी और वासुकी नाग की नेती बनाकर समुद्र मन्थन की आज्ञा दी। समुद्र मन्थन के समय जब आधारी हीन पर्वत समुद्र में धंसने लगा उस समय विष्णु ने विशाल कूर्म का रूप धारण कर पीठ पर मन्दराचल को धारण किया। मत्स्यावतार की भांति कूर्मावतार की मूर्तियां भी दो रूपों में बनीं। कूर्म विग्रह तथा नर-कूर्म-विग्रह दशावतार फलकों पर सामान्यतः कूर्म-विग्रह रूप मिलता है। खजुराहो (लक्ष्मण मन्दिर) में कूर्म तथा नर-कूर्म विग्रह दोनों स्वरूपों की मूर्तियां हैं। यहां भी कूर्म अवतार समुद्र मन्थन की कथात्मक पृष्ठभूमि में दिखाया गया है।<sup>8</sup> नर-कूर्म-विग्रह में योगासन में आसीन विष्णु के पैरों के नीचे कूर्म का उकेरन हुआ है।

### वराह अवतार

पुराणों के अनुसार प्रलय के जल में डूबी पृथ्वी के उद्धार हेतु विष्णु वराह रूप में अवतरित हुए थे। जल के भीतर आदि दैत्य हिरण्याक्ष उनके सम्मुख युद्ध के लिए उपस्थित हुआ पर वराह ने अपने तीक्ष्ण दाढ़ों में उसका अन्त कर दिया। प्रतिमाशास्त्रीय ग्रन्थों में वराह मूर्तियां के दो प्रकार बताये गये हैं— एक







वराह-विग्रह (जिसमें देवता पूर्ण वराह के रूप में दिखाये जायेंगे) और दूसरा नर-वराह-विग्रह (जिसमें मस्तक वराह का और शरीर का शेष भाग रूप में होगा)।<sup>9</sup> वराह के दाढ़ के अग्र भाग में भू-देवी की आकृति लटकी होगी। वराह के पैरों के समीप आदिशेष नागराज की आकृति उकेरी होगी। गुप्तकाल में वराह-विग्रह स्वरूप की मूर्तियों का शिल्पांकन लोकप्रिय हो चुका था। मध्यकाल में वराह-विग्रह स्वरूप की अनेक मूर्तियां बनी जिनके उदाहरण लगभग संपूर्ण भारत में मिले हैं। खजुराहो में वराह का एक स्तम्भ मन्दिर भी है। इस मूर्ति में वराह के सम्पूर्ण शरीर पर नवग्रहों, पंचगणेश, द्वादश-आदित्य, अष्ट-दिक्पालों, सप्त-मातृकाओं, अष्ट वसुओं, लक्ष्मी, सरस्वती तथा अन्य देवताओं एवं ऋषियों की आकृतियां बनी हैं। अन्य उदाहरणों में इन विशेषताओं के साथ ही विष्णु के आयुध (गदा, चक्र, शंख) भी उत्कीर्ण हैं।

विभिन्न ग्रन्थों में नृ-वराह स्वरूप के तीन उपविभजन किये गये हैं—आदिवराह या भू-वराह, यज्ञ-वराह और प्रलय-वराह। ज्ञातव्य है कि उपर्युक्त स्वरूपों में आदि या भू वराह स्वरूप ही भारतीय शिल्प में लोकप्रिय था। ग्रन्थों के अनुसार चतुर्भुज आदि वराह का मस्तक वराह का और शरीर का शेष भाग मनुष्य का होगा। देवता का झुका हुआ दाहिना पैर आदि शेष के मणियुक्त फण पर स्थित होगा।<sup>10</sup> वराह की बायीं कुहनी पर भू-देवी आसीन होगी जिनके कटि के चारों ओर देवता का हाथ लिपटा होगा। नृवराह मूर्तियों का निर्माण गुप्त काल में विशेष लोकप्रिय था जिसका श्रेष्ठतम उदाहरण उदयगिरी की गुफा संख्या 4 की विशाल मूर्ति है।

### नरसिंह अवतार

विभिन्न ग्रन्थों में वर्णित विष्णु भक्त प्रह्लाद और उसके पिता हिरण्यकश्यपु की कथा सर्वविदित है। प्रतिमालाक्षणिक ग्रन्थों में नरसिंह प्रतिमाओं को दो वर्गों







सौम्य और रौद्र में विभाजित किया गया है। सौम्य या शान्त स्वरूप के पुनः तीन उपविभाजन केवल या गिरिज, लक्ष्मी और यानक नरसिंह किये गये हैं।

केवल नरसिंह या योग नरसिंह मूर्ति में द्विभुज या चतुर्भुज नरसिंह पद्मासन पर उत्कृटकासन में या सिंहासन पर ललितासीन होंगे। इस स्वरूप में देवता सिंह-मुख होंगे और दैत्य के वध आदि कोई संकेत नहीं होगा। केवल नरसिंह प्रतिमा का प्रारम्भिकतम उदाहरण देवमगढ के दशावतार मंदिर पर देखा जा सकता है।<sup>11</sup>

लक्ष्मी-नरसिंह मूर्ति में देवता को अपनी शक्ति लक्ष्मी के साथ आलिंगन की मुद्रा में निरूपित किया गया है। चतुर्भुज देवता के तीन हाथों में शंख, चक्र, अभय-मुद्रा में है जबकि एक हाथ आलिंगन मुद्रा में है।

उत्तर भारतीय शिल्प में अत्यधिक लोकप्रिय स्थौण-नरसिंह स्वरूप में उग्र स्वरूप वाले देवता को हिरण्यकश्यपु का उदर विदीर्ण करते हुए निरूपित किया गया है। विष्णुधर्मोत्तर पुराण<sup>12</sup> के अनुसार नरसिंह का शरीर मानव का और मुख सिंह का होगा। पुष्ट एवं विशाल स्कन्धों वाले देवता विभिन्न अलंकरणों से सज्जित होंगे। आलीढ मुद्रा में अवस्थित देवता के जानु पर नील कमल की कान्तिवाला हिरण्यकश्यपु असहाय पड़ा होगा। जिसके उदर को देवता अपने तीक्ष्ण नखों से विदारित करते हुए प्रदर्शित होंगे। स्थौण नरसिंह स्वरूप की प्रमुख मूर्तियां ओसियां, भुवनेश्वर, जावागल, हलेबिड, मोढेरा, गढवा (म. प्र.) पैकोर (वीरभूम, बंगाल), ढाका संग्रहालय में तथा खजुराहो से प्राप्त हुई हैं। इन सभी उदाहरणों में नरसिंह को गोद में पड़े हिरण्यकश्यपु का तीक्ष्ण नखों से उदर विदीर्ण करते हुए दिखाया गया है।





187.31



## वामन (या त्रिविक्रम) अवतार

पारम्परिक कथा के अनुसार देवता और असुरों के मध्य युद्ध में असुरों के विजयी हो जाने के उपरान्त विष्णु ने वामन रूप धारण कर दैत्यराज बलि से तीन पाद पृथ्वी की भिक्षा मांगी। बलि की स्वीकृति के उपरान्त वामन ने विराट रूप धारण कर दो पग में आकाश और पृथ्वी को नाम दिया और तीसरे पग में स्वयं बलि को नापा। इस विराट स्वरूप में ही वामन को त्रिविक्रम नाम से अभिहित किया गया। प्रस्तुत अवतार स्वरूप की मूर्तियां दो रूपों में बनीं, एक वामन रूप में और दूसरे महाप्रमाण त्रिविक्रम रूप में।<sup>13</sup>

प्रतिमालाक्षणिक ग्रन्थों में द्विभुज वामन मूर्ति की ऊँचाई 56 अंगुल बताई गई है और वामन के करों में कमण्डलु या दण्ड एवं छत्र के प्रदर्शन का निर्देश दिया गया है। उनके केश जटा के रूप में आबद्ध होंगे, कानों में कुण्डल और अधोवस्त्र के रूप में मृग-चर्म प्रदर्शित होगा। मूर्तियों में वामन को सामान्यतः कुमार रूप में ब्रह्मचारी के समान दिखाया गया है। वामन की स्वतन्त्र मूर्ति संख्या की दृष्टि से अत्यल्प है और उनमें वामन अधिकांशतः चतुर्भुज हैं। जिसमें देवता के पार्श्वों में उनकी शक्तियां (श्री और पुष्टी) भी निरूपित है।

वामन स्वरूप की कई मूर्तियां ओसियां, खजुराहो, एलोरा, भुवनेश्वर तथा हलेबिड से मिली हैं। खजुराहो में द्विभुज और चतुर्भुज दोनों ही रूपों में वामन की मूर्तियां मिली हैं। जिनमें वामन स्थूलकाय और ठिगने स्वरूप तथा घुंघराले केशराशि वाले हैं। और उनके पार्श्वों में कभी-कभी पद्म तथा चक्र पुरुषों की आकृतियां बनी हैं। वामन का एक हाथ वरद मुद्रा में है और शेष में सामान्यतः शंख, गदा और चक्र प्रदर्शित हैं। पद्म कुछ ही उदाहरणों में द्रष्टव्य है। एलोरा की मूर्तियों में कथात्मक भाव व्यक्त करने के उद्देश्य से वामन के समीप शुक्राचार्य एवं बलि की आकृतियां भी उकेरी हैं।







त्रिविक्रम रूप में देवता का दाहिना पैर भूमि पर स्थित होगा और बायां तीस या साठ आंश का कोण बनाते हुए ऊपर की ओर उठा होगा। कभी-कभी यह पैर मस्तक तक उठा होता है।<sup>14</sup> त्रिविक्रम मूर्ति के नीचे की ओर वामन की आकृति भिक्षा की याचना करते हुए उत्कीर्ण की जायेगी जिसके समीप ही दैत्यराज बलि पत्नी के साथ दान देने की मुद्रा में खड़े होंगे। हलेबिड के होयसल एवं अन्य होयसल मंदिरों में देखे जा सकते हैं।

### परशुराम अवतार

क्षत्रियों के संहार के उद्देश्य से परशुराम का अवतार हुआ था। इन्होंने 21 बार क्षत्रियों का समूल नाश किया था। परशुराम को विष्णु का आवेशावतार माना गया है। ग्रन्थों में जटाजूट से शोभित द्विभुज परशुराम के करों में परशु और सूची-हस्त-मुद्रा प्रदर्शित करने का निर्देश है।<sup>15</sup> इसकी स्वतन्त्र मूर्तियों की संख्या नगझय है। इन्हें मुख्यतः दशावतार प्रस्तर फलकों पर ही निरूपित किया गया है।

### राम अवतार

विष्णु के एक अवतार के रूप में दशरथी राम की लोक मानस से जुड़े होने के कारण ब्राह्मण देवों में विशेष प्रतिष्ठा रही है। सत्य है कि भारतीय शिल्प में दशरथ पुत्र राम की मूर्तियां तथा अन्य देवी की तुलना में बाद में (गुप्तकाल) लोकप्रिय हुई। किन्तु विष्णु के एक अवतार रूप में इनकी कल्पना निःसंदे प्राचीन थी। प्रतिमाशास्त्रीय ग्रन्थों में आभूषणों एवं किरीटमुकुट से शोभित द्विभुज राम के मनोहारी और युवराज रूप में निरूपण का निर्देश है।<sup>16</sup> द्विभुज राम के करों में धनुष और बाण प्रदर्शित होंगे। चतुर्भुज होने पर धनुष और बाण के अतिरिक्त खड्ग और शंख भी दिखाने का विधान मिलता है। आवश्यकतानुसार राम की शक्ति सीता वाम पार्श्व में और लक्ष्मण एवं हनुमान समीप ही आमूर्तित होंगे।







राम की प्रारंभिकतम मूर्तियां देवगढ के दशावतार मंदिर पर उत्कीर्ण है। इनमें राम धनुष और बाण से युक्त हैं। देवगढ में रामकथा के कई दृश्यों का भी उकेरन हुआ है। एलोरा के कैलाशमंदिर और खजुराहो के मंदिरों से राम की मूर्तियां मिली हैं। खजुराहो के पार्श्वनाथ जैन मंदिरकी भित्ति पर राम-सीता को एक नयनाभिराम मूर्ति उत्कीर्ण है।<sup>17</sup> समीप ही कपिमुख हनुमान भी रूपायित हैं। जिनके मस्तक पर राम का एक हाथ पालित मुद्रा में अनुग्रह के भाव में रखा है। यह मूर्ति भक्त और आराध्य के अन्तर्सम्बन्धों का अलौकिक शिल्पांकन है। राम की स्वतन्त्र मूर्तियां तुलनात्मक दृष्टि से दक्षिण भारत में अधिक लोकप्रिय रही है। उत्तर भारत में राम की मूर्तियां जहां मुख्यतः विष्णु के एक अवतार के रूप में उत्कीर्ण हुई वहीं दक्षिण भारत में राम की मूर्तियों का स्वतन्त्र अस्तित्व परिलक्षित होता है। कर्नाटक में राम का एक सुन्दर मंदिर हीरेमैग्लर में स्थित है जिसे भारत में राम का प्राचीनतम मंदिर माना गया है।<sup>18</sup>

### बलराम अवतार

पृथ्वी को धारण करने वाले आदिशेष बलराम को भी विष्णु का ही अवतार माना गया है इनके मस्तक पर आदिशेष के फण (सप्त सर्पफण) तथा करों में मुख्य आयुध के रूप में हल और मुसल का उल्लेख मिलता है जो कृषि देवता के रूप में बलराम की अवधारण का संकेत है। चतुर्भुज होने पर दो अन्य हाथों में गदा और पद्म का उल्लेख हुआ है। इन उदाहरणों में सामान्यतः सात सर्पफणों के छत्र वाले बलराम स्थानक रूप में द्विभुज या चतुर्भुज निरूपित हैं।<sup>19</sup> सभी उदाहरणों में हाथों में हल और मुसल अनिवार्यतः देखे जा सकते हैं। चतुर्भुज होने पर दो अन्य हाथों में पद्म, गदा, चक्र एवं चषक (या एक हाथ कट्यावलम्बित) दिखाये गये हैं। खजुराहो एवं ओसियां की शक्ति सहित आलिंगन मूर्तियों में एक हाथ आलिंगन मुद्रा में है।







### कृष्ण अवतार

कृष्ण के दाहिने पार्श्व में रूक्मिणी और बायें सत्यभामा के आमूर्तित होने का सन्दर्भ भी मिलता है। वाहन गरुड़ के उत्कीर्णन का निर्देश है। उपर्युक्त विवरणों वाली कृष्ण की मूर्तियां भारत में अधिक उपलब्ध हैं। विष्णुधर्मोत्तर पुराण के अनुसार देवता के हाथ में चक्र और उनके पार्श्व में नीलोत्पल से युक्त रूक्मिणी के होने का निर्देश है।<sup>20</sup> कृष्ण की वेणुवादन करती, पार्थसारथी, कालियदमन ओर गोवर्धनधारी मूर्तियां सम्पूर्ण भारत से प्राप्त हुई हैं। कालियमर्दन मूर्तियों उत्कृष्टतम् उदाहरण भुवनेश्वर, विमलवसही, हलेबिड, बेलूर एवं खजुराहो से मिले हैं। कृष्ण की स्वतन्त्र मूर्तियों के स्थान पर उनकी बाल-लीलाओं के अंकन अधिक लोकप्रिय थे जिनके उदाहरण कुषाण काल से ही मिलने लगते हैं।

### बुद्ध अवतार

बौद्ध धर्म के प्रवर्तक बुद्ध को भी विष्णु के दशावतारों की सूची में शामिल किया गया था। बुद्ध को विष्णु का अवतार स्वीकार कर वैष्णव सम्प्रदाय ने अपनी धर्म सहिष्णुता को प्रमाणित कर बौद्धों को अपने धर्म के प्रति आकृष्ट किया। भागवत सम्प्रदाय में बुद्ध को माया-मोह का अवतार माना गया है।<sup>21</sup> और यह माना गया है कि बुद्ध ने वैदिक धर्म के विरुद्ध उपदेश देकर दैत्यों को भ्रमित कर उनका नाश किया था। विष्णु पुराण में माया-मोह को निर्वस्त्र और मुण्डित मस्तक वाला बताया गया है।

### कल्किअवतार

विष्णु का यह अवतार भ्रूविष्य में होने वाला अवतार है जो कलियुग के अंतिम चरण में धर्म के पुनरुत्थान के लिए होगा। पुराणों के अनुसार इस अवतार में विष्णु ब्राह्मण विष्णुयश के पुत्र के रूप में अवतरित होंगे। विष्णुधर्मोत्तर पुराण







एवं रूपमण्डन द्विभुज कल्कि के अश्व पर आसीन होने और एक भुजा में खड्ग धारण करने का उल्लेख करते हैं। उनका मुखमण्डल क्रोध से रक्तितम होगा।<sup>22</sup> भुवनेश्वर के मणिभद्रेश्वर मन्दिर पर आश्वारूढ कल्कि की एक स्वतन्त्र मूर्ति देखी जा सकती है। जिसमें दाहिने हाथ में खड्ग और बायें में छत्र प्रदर्शित है। ओसियां, खजुराहो, एलोरा एवं हलेबिड जैसे स्थानों पर कल्कि की स्वतन्त्र मूर्तियों के उदाहरण नहीं मिलते हैं।

### विश्वरूप विष्णु

गीता में उल्लेख है कि अर्जुन की प्रार्थना पर कृष्ण ने अर्जुन को विश्वरूप या विराटरूपका दर्शन कराया था। इस स्वरूप में अनेक मुखों नेत्रों और भुजाओं वाले विष्णु को विविध आयुधों से युक्त निरूपित किया गया है। वैष्णव धर्म के बढ़ते प्रभाव के फलस्वरूप विष्णु के महत्त्व में जो वृद्धि हुई उसे विश्वरूप की परिकल्पना में देखा जा सकता है। विष्णु की व्यापकता या श्रेष्ठता को अभिव्यक्त करने के उद्देश्य से ही विश्वरूप की कल्पना की गयी जिसमें सम्पूर्ण चराचर जगत तथा देवमण्डल स्वयं विष्णु में ही निहित है। यह कल्पना शैव धर्म में शिव के महादेव या महेश स्वरूप की कल्पना के समान हैं जिसके अन्तर्गत शिव को भवसृज कहा गया और सृष्टि स्थिति तथा विलय तीनों का कारण माना गया है।

सर्वप्रथम विष्णुधर्मोत्तर पुराण में विश्वरूप का निरूपण मिलता है जिसके अनुसार चार वैष्णव मुखों के ऊपर शिव के महेश स्वरूप के चार मुख (ईशानमुख को छोड़कर) और सबसे ऊपर ब्रह्मा के मुख बने होंगे। अपराजितपृच्छा, रूपमण्डन और देवतामूर्तिप्रकरण<sup>23</sup> में विश्वरूप प्रतिमा का विस्तृत और एक जैसा विवरण मिलता है। इन शिल्पशास्त्रों के अनुसार विश्वरूप में विष्णु चतुर्मुख और विशांतिमुख होंगे। गरुड पर आरूढ विष्णु नर, सिंह, स्त्री और वराहमुख वाले







दिखाये जायेंगे। वनमाला से शोभित विष्णु किरीटमुख एवं अन्य आभूषणों से सज्जित और समपाद स्थानक मुद्रा में रूपायित होंगे।

वैकुण्ठ मूर्तियों के समान ही विश्वरूप विष्णु के भी अनेक उदाहरण मिले हैं जिनका निर्माण गुप्तकाल में प्रारम्भ हुआ। अलीगढ़ से प्राप्त और मथुरा संग्रहालय में सुरक्षित प्राचीनतम उदाहरण में केवल तीन मुख दिखाये गये हैं। मध्य में पुरुष मुख है जबकि दक्षिण पार्श्व में सिंह और वाम पार्श्व में वराह मुख है। प्रभामण्डल के अवशिष्ट भाग पर नवग्रह तथा अन्य देवों की आकृतियां बनी हैं।<sup>24</sup> गुप्तकाल के बाद उत्तर प्रदेश तथा मध्यप्रदेश एवं गुजरात और राजस्थान के विभिन्न स्थलों से इस स्वरूप की सातवीं से बारहवीं शती ई के मध्य कई मूर्तियां मिली हैं। यह सर्वथा आश्चर्य की बात है कि ओसियां एवं भुवनेश्वर जैसे महत्वपूर्ण कला केन्द्रों पर इस स्वरूप की एक भी मूर्ति नहीं मिली है। दक्षिण भारत से भी इस स्वरूप की मूर्तियों के उदाहरण नहीं मिलते हैं। स्पष्टतः यह स्वरूप उत्तर भारत में ही लोकप्रिय था।

लगभग आठवीं शत ई. की प्रतिहार काल की एक मनोज्ञ मूर्ति कन्नौज से मिली है। जिसमें विष्णु के विराट रूप को पूरे विस्तार और कल्पनाशीलता के साथ अभिव्यक्त किया गया है। द्विभंग में खड़े विष्णु पंचमुख हैं जिनमें केन्द्रीय नर मुख (सौम्य) के अतिरिक्त मत्स्य, कूर्म, वराह और नरसिंह मुखों को भी दिखाया गया है।<sup>25</sup> इस प्रकार मुखों की संख्या में वृद्धि हुई किन्तु हाथों की संख्या पूर्ववत आठ ही बनी रही है।

खजुराहो से विश्वरूप विष्णु की केवल एक मूर्ति मिली है जो लक्ष्मण मन्दिर के महामण्डप की भीतरी रथिका में सुरक्षित है। त्रिभंग में खड़े विष्णु वैकुण्ठ मूर्तियों के समान त्रिमुख हैं जिसमें मध्य भाग में पुरुष मुख तथा पार्श्वों में सिंह और वराह मुख हैं किन्तु ध्यान से देखने पर सिंह और वराह मुखों के पीछे







मत्स्य तृणि कूर्म मुख भी देखे जा सकते हैं। इन मुखों के ऊपर नौ अन्य पुरुष मुख भी बने हैं। द्वादशभुजी मूर्ति के अधिकांश हाथ खण्डित हैं। किन्तु दो में गदा एवं चक्र स्पष्ट हैं जबकि एक हाथ कट्यावलम्बित है। बनमाला तथा अन्य आभूषणों से सज्जित विष्णु के दाहिने पार्श्व में गदाधारी एवं बायें पार्श्व में खड्गधारी अनुचर खड़े हैं जिनके पीछे पुरुष-विग्रह में गरुड़ की आकृति बनी है। मूर्ति के ऊपरी भाग में एक ओर ब्रह्मा तथा दूसरी ओर शिव आकारित हैं।<sup>26</sup>

इस प्रकार स्पष्ट है कि गुप्तकाल में विश्वरूप विष्णु की प्रतिमाओं के निर्माण की परम्पराके प्रारम्भ के बाद उत्तर भारत के विभिन्न क्षेत्रों में इस स्वरूप की कई मूर्तियां बनी हैं जिनमें उन्हें चार, आठ और बारह हाथों वाला दिखाया गया है। यद्यपि मध्यकालीन मूर्तियां मुख्यतः अपराजितपृच्छा के विवरणों से प्रभावित हैं किन्तु किसी भी उदाहरण में बीस हाथ नहीं दिखाये गये हैं।

### वैकुण्ठ प्रतिमा

आश्चर्य की बात है कि भारतीय शिल्प में गुप्तकाल से मध्ययुग तक निरन्तर लोकप्रिय होने के बाद भी विष्णु के वैकुण्ठ स्वरूप से सम्बन्धित कथा का साहित्य में उल्लेख नहीं मिलता है। सर्वप्रथम खजुराहो के लक्ष्मण मंदिर के यशोवर्मन के विक्रम संवत् 1011 के लेख में वैकुण्ठ स्वरूप से सम्बन्धित कथा वर्णित है जिसके अनुसार विष्णु ने कपिल आदि तीन असुरों के संहार के लिए वैकुण्ठ रूप धारण किया था।<sup>27</sup> वराह और नरसिंह रूपों वाले इन असुरों का शरीर एक ही था जिन्हें ब्रह्मा से यह वरदान प्राप्त था कि उनका संहार उन्हीं का रूप धारण करने वाला कर सकेगा। इसी कारण विष्णु ने सौम्य, वराह, सिंह और कपतल इन चारमुखों से युक्त वैकुण्ठ रूप धारण कर उन असुरों का संहार किया।







सर्वप्रथम विष्णुधर्मोत्तर पुराण में विष्णु के चारों रूपों वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध की सम्मिलित मूर्ति को वैकुण्ठ नाम दिया गया हैं ऐसी मूर्ति को चतुर्मुख कहा गया है। इन चार मुखों में मध्य का पूर्वी मुख सौम्य, दक्षिणी मुख नरसिंह, पश्चिमी मुख कपिल और उत्तरी मुख वराह मुख होंगे।<sup>29</sup>

वैकुण्ठ मूर्तियों का निर्माण गुप्तकाल में प्रारम्भ हुआ जिसके प्रारंभिक उदाहरण मथुरा से मिले हैं। पूर्व मध्ययुग में कश्मीर वैकुण्ठ पूजा का विशेष महत्वपूर्ण केन्द्र बन गया। फलतः कश्मीर से कईवैकुण्ठ मूर्तियां मिली है। कश्मीर के बाहर चम्बा, राजस्थान (शाहाबाद, कोटा) कुरुक्षेत्र, उत्तर प्रदेश(मथुरा, वाराणसी), मध्यप्रदेश जैसे क्षेत्रों से भी पर्याप्त मूर्तियां मिली हैं।

खजुराहो में लक्ष्मण मनिदर की वैकुण्ठ प्रतिमाके अतिरिक्त तीन अन्य वैकुण्ठ मूर्तियां भी हैं। इनमें से तीन मूर्तियां त्रिमुखी हैं।<sup>30</sup> जबकि खजुराहो के पुरातत्व संग्रहालय की मूर्ति चतुर्मुखी है। तीसरी त्रिमुखी मूर्ति कन्दरिया महादेव मन्दिर में है। इस उदाहरण में देवता के केवल तीन ही हाथ सुरक्षित हैं जिनमें पद्म, चक्र और शंख हैं। पुरातत्व संग्रहालय की अश्वमुख वाली चतुर्मुखी मूर्ति में सभी हाथ खण्डित हैं। उल्लेख नीय है कि वैकुण्ठ स्वरूप की सर्वाधि मूर्तियां नवी सं 11 वीं शती ई. के बीच बनी। चन्द्रभागा (झालरापाटन, राजस्थान) की 10वीं शती ई. की एक अष्टभुज मूर्ति शासकीय संग्रहालय, झालवाड़ा में सुरक्षित है। नरसिंह और वराह मुखों वाले देवता मानव देहधारी गरुड पर आरुढ हैं। जिनके समीप चक्र एवं शंख पुरुषों की आकृतियां बनी हैं।







सन्दर्भ ग्रन्थ एवं पादटिप्पणियां —

1. वायु पुराण 9/84
2. विष्णु पुराण 5/1/70-81
3. वायु पुराण 96/205
4. मत्स्य पुराण 157/15-16
- 28.प्र. वि., पृ० 255
- 29.वही
- 30.वही
- 31.वही
- 32.विष्णुधर्मोत्तर पुराण, 81/2-8
- 33.अपराजि पृच्छा, 219/1-9
- 34.महाभाष्य, 6/3/5
- 35.महाभारत, 12रु349/37
- 36.वही, 12/389/177
- 37.वायु पुराण, 98/71
- 38.भागवत पुराण, 1/3/6-22
- 39.वही, 1/3/16-22
- 40.रघुवंश, 13/5
- 41.बृहत्संहिता, 58/30
- 42.शतपथ ब्राह्मण, 1/8
- 43.तैत्तिरीय सं०, 6,2,4,2
- 44.शतपथ ब्राह्मण, 14,1,2,11
- 45.वाल्मीकी रामायण, 3/45/13







- 46.वै. आ., पृ० 186
- 47.ई. एच. ई., पी. पी. 149-51
- 48.शिल्प रत्न, अ. 25/11
- 49.ई. एच. आई, आई. आई. 152-53
- 50.वायु पुराण 101/298
- 51.वायु पुराण 30/163
- 52.ब्रह्माण्ड पुराण 4/6/6
- 53.विष्णु पुराण 1/9102/105
- 54.मत्स्य पुराण 301/40-47
- 55.विष्णु पुराण 1/8/19
- 56.जे० सी० हार्क गुप्त, स्क० चि० 91-92
- 57.डॉ० अग्रवाल, भारतीय कला, पृ० 320







# सूर्य प्रतिमा







## सूर्य

पांच प्रमुख ब्राह्मण सम्प्रदायों में सूर्य के उपासकों का एक स्वतन्त्र की उपासना होती रही है। विश्व की सभी प्राचीन सभ्यताओं में देवताओं की कल्पना के मूल में प्राकृतिक तत्वों का सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान रहा है। प्रारंभिक अवस्था में मनुष्य की प्राकृतिक तत्वों पर पूर्ण निर्भरता के फलस्वरूप ही विभिन्न प्राकृतिक तत्वों का दैवीकरण किया गया जिनमें सूर्य निःसन्देह सर्वाधिक महत्वपूर्ण थे।<sup>1</sup> जीवनदायिनी प्रकाश और ऊर्जा के अजस्त्र स्रोत के रूप में प्राकृतिक शक्तियों में सूर्य को सर्वोच्च प्रतिष्ठा मिली। भारत के अतिरिक्त विश्व की अन्य प्राचीन सभ्यताओं में भी प्रारम्भ से ही सूर्योपासना की लोकप्रियता के प्रमाण मिलते हैं।

सूर्य को भारतीय कला में ई. पू. से ही प्रतीक और मानव दोनों ही रूपों में निरूपित किया गया। चक्र, पद्म और रश्मि मण्डल जैसे प्रतीकों का अंकन आहत मुद्राओं के अतिरिक्त पांचाल एवं मित्रवंशी मुद्राओं पर भी देखा जा सकता है।<sup>2</sup> दूसरी-पहली शती ई.पू. से कुछ मुद्राओं तथा स्वतन्त्र मूर्तियों के रूप में सूर्य के निरूपण के उदाहरण मिलते हैं। सूर्य की प्रारंभिक मूर्तियां बोधगया (बिहार, पहली शती ई. पू.), भाजा (महाराष्ट्र, दूसरी-पहल शती ई.पू.), अनन्त गुफा (खण्डगिरी, उड़ीसा, पहली शती ई.) तथा लाला भगत (कानपुर, उत्तर प्रदेश, दूसरी शती ई.) जैसे स्थलों से मिली है। इन मूर्तियां का ब्राह्मण, बौद्ध एवं जैन स्थलों से प्राप्त होना प्रारम्भ में सभी धर्मों में सूर्य पूजन एवं मूर्ति निर्माण की परम्परा का साक्षी है। उल्लेखनीय है कि आगे चलकर सूर्य पूजा और मूर्ति निर्माण पर विदेशी प्रभाव (उपानह, वर्म और अब्यंग) के कारण जैन परम्परा में स्वतन्त्र देवता के रूप में सूर्य का विशेष महत्व नहीं मिला। प्रारंभिक उदाहरणों में सूर्य को एक चक्र और चार अश्वों वाले रथ पर ऊषा, प्रत्यूषा के साथ दिखाया गया है।<sup>3</sup> कुषाणकाल में सूर्य पूजा एवं मूर्ति निर्माण में ईरानी मगों के प्रभाव के







कारण वर्म, उपानह और अव्यंग के रूप में विदेशी प्रभाव का प्रवेश हुआ। गुप्तकाल में भी मूर्तियों में विदेशी प्रभाव क्रमशः कम होता गया जो मुख्यतः उपानह के रूप में ही दिखायी देता है। सूर्य पूजा एवं मूर्ति निर्माण में विदेशी तत्वों के समविष्ट किये जाने के कारण ही दक्षिण भारत में सूर्योपासना की तुलना में बहुत सीमित रहा है।<sup>4</sup> गुप्तकाल के बाद (सातवीं से तेरहवीं शती ई. के बीच) परिकर की संरचना एवं पार्श्व देवताओं की आकृतियों की दृष्टि से सूर्य मूर्तियां क्रमशः जटिल होती गयी।

सर्वप्रथम विष्णुधर्मोत्तर पुराण में सूर्य प्रतिमा का विस्तृत निरूपण हुआ है। विभिन्न आभूषणों से अलंकृत द्व श्मश्रुयुक्त कवचधारी सूर्य का चतुर्भुज और उदीच्यवेश में ध्यान कियाग या है, जिनके दो हाथों में पुष्पमाला के रूप में रश्मियां दिखायी जायेंगी तथा पार्श्वों में चर्म और शूलधारी दण्ड तथा पत्र और लेखनीधारी पिंगल की आकृतियां उकेरी होंगी। दण्ड ओर पिंगल भी उदीच्यवेश में होंगे और उनके मस्तकों पर सूर्य के शेष दो हाथ स्थित होंगे।<sup>5</sup> सूर्य के बायें पार्श्व में सिंहांकित ध्वज का निर्देश है। पार्श्वों में सूर्य पुत्र रेवन्त, यम, मनु द्वय तथा चार पत्नियों (राज्ञी, निक्षुभा, छाया और सुवर्चसा) की आकृतियां भी बनी होगी। एक चक्र 6 आरों तथा 7 अश्वों वाले रथ पर आसीन सूर्य चारों ओर से ग्रहों से परिवृत होंगे और उनके साथ ही सारथि अरुण भी दिखाये जायेंगे।

विष्णुधर्मोत्तर पुराण के अतिरिक्त अन्य सभी ग्रन्थों में सूर्य को द्विभुज और दोनों करों में सनाल पद्म से युक्त निरूपित किया गया है।<sup>6</sup> मयमत में एक चक्र तथा सप्ताश्व-रथ वाले सूर्य का द्विभुज तथा चतुर्भुज दोनों ही स्वरूपों में निरूपण हुआ है। सूर्य के दो हाथों में सनाल पद्म होगा और चतुर्भुज स्वरूप में शेष दो हाथ अभय और वरद मुद्रा में होंगे।







मध्यकालीन मूर्तियों में केवल परिकर की आकृतियों की दृष्टि से ही सूर्य प्रतिमाओं में विकास परिलक्षित होता है। विष्णुधर्मोत्तर पुराण के विवरण के अनुरूप सूर्य को कभी भी श्मश्रुयुक्त नहीं दिखाया गया है, किन्तु विष्णुधर्मोत्तर में निर्दिष्ट अन्य विशेषताएं सातवीं शती ई. के बाद की सूर्य मूर्तियों में कुछ अतिरिक्त विवरणों के साथ देखी जा सकती है। जिनमें अरुण सारथि, ऊषा, प्रत्यूषा, दण्ड और पिंगल, छाया और निक्षुभा, नवग्रहों द्वादश-आदित्यों, अश्विन-कुमारों एवं रेवन्त आदि की आकृतियों का उकेरन उल्लेखनीय है।<sup>7</sup> उत्तर भारत की अपेक्षा दक्षिण भारत से सूर्य की निःसन्देह बहुत कम मूर्तियां मिली हैं और उनमें प्रतिमालक्षण की दृष्टि से विकास भी नहीं परिलक्षित होता है। सूर्य के साथ एक और आश्चर्य की बात यह है कि जहां मध्ययुगीन मूर्तियों में अन्य ब्राह्मण देवताओं को अपनी-अपनी शक्तियों के साथ आलिंगन मुद्रा में अनेकशः दिखाया गया है, वहीं सूर्य को भी शक्ति के साथ आलिंगन मुद्रा में नहीं रूपायित किया गया। संभव है कि इस प्रसंग में भी विदेशी प्रभाव एक कारण रहा हो।<sup>8</sup>

प्रतिमालक्षण की दृष्टि से मध्ययुगीन सूर्य मूर्तियों को तीन वर्गों में बांटा जा सकता है। पहले वर्ग में साधारण रचना वाली सूर्य मूर्तियां आती हैं जिनमें परिवार में दो या तीन आकृतियां उकेरी हैं। दूसरे वर्ग में ऐसी मूर्तियां हैं जिनमें परिवार देवताओं की संख्या में वृद्धि देखी जा सकती है। तीसरे वर्ग में पूर्ण विकसित कोटि की ग्यारहवीं से तेरहवीं शती ई. के मध्य की ऐसी सूर्य मूर्तियां हैं जिनमें सूर्य के लगभग सभी परिकर देवताओं की आकृतियां उत्कीर्ण हैं।<sup>9</sup> द्वादश आदित्यों के रूप में भी सूर्य की मूर्तियां बनीं। द्वादश-आदित्य मूर्तियों के उदाहरण हलेबिड के शान्तलेश्वर मंदिर (बारहवीं शती) एवं मोढेरा के सूर्य मन्दिर पर हैं जिनमें सनाल-पद्मधारी द्वादश-आदित्य समभंग में ऊषा प्रत्यूषा सहित खड़े हैं।







सूर्य की मूर्तियों के विकास की दृष्टि से विभिन्न स्थलों के उदाहरणों में लक्षणपरक भेद नहीं दिखाई देते हैं। केवल परिवार देवताओं की आकृतियों की दृष्टि से ही उनमें अन्तर द्रष्टव्य है। अतः कुछ प्रमुख स्थलों से प्राप्त सूर्य प्रतिमाओं का उल्लेख भी अभीष्ट है।<sup>10</sup> गुजरात में रोडा से प्राप्त सातवीं से दसवीं शती ई. के मध्य की तीन मूर्तियां बड़ौदा संग्रहालय में सुरक्षित हैं जिनमें उत्कृष्टकासन में आसीन और उपानह से युक्त सूर्य के दोनों हाथों में सनाल पद्म हैं और पीठिका पर सात अश्वों की छोटी आकृतियां उकेरी हैं। सूर्य के वक्ष स्थल पर वर्म (कवच) दिखाया गया है। उल्लेखनीय है कि सूर्य को अन्य सामान्य आभूषणों के साथ दिखाया गया है। उल्लेखनीय है कि सूर्य को अन्य सामान्य आभूषणों के साथ किरीटमुकुट और कटि पर एक विशेष प्रकार के गांठ लगे वस्त्र तथा दोनों हाथों से नीचे लहराते हुए उत्तरीय, कटिबन्ध और कन्धों से वक्ष तक बंधा हुआ वस्त्र विशेषतः उल्लेखनीय है जिनका सुन्दरतम उकेरन ओसिया, मोढेरा एवं खजुराहो की मूर्तियों में द्रष्टव्य है।<sup>11</sup> कुछ क्षेत्रों में विदेशी प्रभाव को बचाने की दृष्टि से सूर्य के पैरों को रथों में छिपा हुआ भी दिखाया गया है।

उत्तर भारत की ओसियां, खजुराहो एवं अन्य स्थलों की सूर्य मूर्तियों की भांति मोढेरा की मूर्तियां भी उदीच्य वेशधारी हैं जिनमें उपानह और अव्यंग स्पष्ट हैं। दण्ड और पिंगल के साथ भी उपानह दिखाया गया है। अलंकृत किरीटमुकुट तथा अन्य आभूषणों से सज्जित सूर्य के साथ प्रलम्बमाला के स्थान पर दोनों हाथों से लटकते हुए विशिष्ट उत्तरीय अंकन हुआ है। उल्लासित सूर्य के मुख पर मन्दस्मित का भाव प्रशंसनीय है।<sup>12</sup> दण्ड और श्मश्रुयुक्त पिंगल की आकृतियां क्रमशः दण्ड और लेखनी तथा मसिपात्र से युक्त हैं।

पार्श्वों में शूलधारी दण्ड और लेखनी तथा मसिपात्र से युक्त पिंगल अश्विन कुमार एवं चामरधारिणी राज्ञी-निक्षुभ की आकृतियां उकेरी हैं।







## रेवन्त

रेवन्त सूर्य और संज्ञा के पुत्र हैं जिनके पूजन की परम्परा प्राचीनकाल से मिलती है। सूर्यपूजन की लोकप्रियता के कारण वृहतसंहिता एवं विष्णुधर्मोत्तर जैसे प्रारम्भिक ग्रन्थों में भी सूर्य पुत्र रेवन्त का उल्लेख हुआ है। किन्तु रेवन्त की मूर्तियां संख्या की दृष्टि से अत्यल्प हैं। दक्षिण भार में रेवन्त मूर्ति की अनुपलब्धता के कारण गोपीनाथ राव ने अपने ग्रन्थ में रेवन्त के प्रतिमालक्षणों की कोई चर्चा नहीं की है। विष्णुधर्मोत्तर (70.5) में मात्र इतना ही उल्लेख है कि अश्वारूढ़ रेवन्त सूर्य के समान होंगे। प्रारम्भिक वैदिक ग्रन्थों एवं महाभारत में सूर्य पुत्रों में रेवन्त का अनुल्लेख इस बात का संकेत देता है कि सूर्यपुत्रों में रेवन्त को बाद में सम्मिलित किया गया। रेवन्त की मूर्तियों का निर्माण गुप्तकाल में प्रारम्भ हुआ। पूर्वमध्यकाल<sup>13</sup> में बिहार और बंगाल तथा राजस्थान में रेवन्त की पर्याप्त मूर्तियां उकेरी गयीं। खजुराहो, मोढेरा और ओसियां से भी रेवन्त की कुछ मूर्तियां मिली हैं।

साहित्य एवं शिल्प के आधार पर रेवन्त की मूर्तियों को दो वर्गों में बांटा जा सकता है। पहले वर्ग में ऐसी मूर्तियां हैं जिनमें वृहतसंहिता के विवरण के अनुरूप रेवन्त को कुछ सहयोगियों सहित अश्वारूढ़ आखेटक के रूप में आमूर्तित किया गया। इस वर्ग की मूर्तियों (भरतपुर, झालावाड़, नालन्दा, बडकामता) में या तो आखेट के क्षणों को शिल्पांकित किया गया है या फिर आखेट के पश्चात् वापिस लौटने की स्थिति (खजुराहो एवं सुल्तानगंज की मूर्तियां) अभिव्यक्त हुई है।

कभी-कभी विष्णु के कल्कि अवतार और रेवन्त की मूर्तियों की पहचान में उनके लक्षण-साम्य के कारण कठिनाई भी उपस्थित होती है। किन्तु वास्तव में दोनों के अश्वारूढ़ होने के अतिरिक्त उनके मध्य अन्य कोई समानता नहीं है। रेवन्त सूर्य के समान उपानह, वर्म और किरीटमुकुटधारी दिखाये गये हैं।







सभी मूर्त उदाहरणों में रेवन्त द्विभुज और अश्वारूढ है। नालन्दा से मिली मूर्ति में सर्वालंकृत और अश्व पर आरूढ रेवन्त के एक हाथ में पात्र (चषक) तथा दूसरे में अश्व की लगाम प्रदर्शित है। समीप ही एक सेवक लम्बा छत्र लिये दिखाया गया है जिसका छत्र भाग रेवन्त के सिर के ऊपर द्रष्टव्य है। मध्ययुग की अन्य मूर्तियों में भी यही विशेषताएं मिलती हैं। रेवन्त की कई मूर्तियां राजस्थान के मलाह, हर्षगिरि, आबनेरी, नगर स्थित श्याम जी मन्दिर, बागोर ग्राम (भीलवाड़ा) एवं अजमेर, भरतपुर और झालवाड़ा संग्रहालयों में सुरक्षित हैं। इनमें से अधिकांश उदाहरणों में रेवन्त आखेटक के रूप में अश्वारूढ दिखाये गये हैं। उनके आगे पीछे दो अश्वारोही शिकारियों तथा शूकरों का पीछा करती श्वान आकृतियां उकेरी गयी हैं। कुछ उदाहरणों में कए सैनिक रेवन्त का खड्ग व खेटक लेकर खड़ा है तथा अश्वारूढ रेवन्त के समीप ही मदिरा पात्र लिए सेविका खड़ी है जिसे कुछ उदाहरणों में रेवन्त के हाथ में स्थित चषक में मदिरा डालते हुए दर्शाया गया है।

सूर्य के समान रेवन्त उपानह, किरीटमुकुट आदि से अलंकृत हैं। अश्व की पीठ पर खड्ग और खेटक बंधा है।







सन्दर्भ ग्रन्थ टिप्पणियां —

5. वायु पुराण 9/84
6. विष्णु पुराण 5/1/70-81
7. वायु पुराण 96/205
8. मत्स्य पुराण 157/15-16
9. वायु पुराण 101/298
10. वायु पुराण 30/163
11. ब्रह्माण्ड पुराण 4/6/6
12. विष्णु पुराण 1/9102/105
13. मत्स्य पुराण 301/40-47
14. विष्णु पुराण 1/8/19
15. डॉ० अग्रवाल, भारतीय कला, पृ० 320
16. कुमार, 7, 30 और 38, 6, 80 ,81
17. का. इ. इ. 3 पृ. 76







# देवी प्रतिमाए







## शक्ति या देवी प्रतिमा

देवी पूजन की परम्परा मुख्यतः दो रूपों में मिलती है— एक मातृदेवी के रूप में और दूसरी शक्ति के रूप में। प्रारम्भ में देवी की उपासना माता के रूप में अधिक लोकप्रिय थी। पुराणों की दुर्गा स्तुतियों में जगन्माता या जगदम्बा स्वरूप की अवधारणा में देवी के माता स्वरूप का स्पष्ट संकेत देखा जा सकता है। भारत तथा मिस्र, मेसोपोटामिया, यूनान एवं विश्व की अन्य प्राचीन सभ्यताओं में धर्म की अवधारणा के साथ ही मातृ-पूजन की परम्परा भी आरम्भ हुई। सृष्टि की निरन्तरता बनाये रखने में योगदान के कारण ही मातृदेवियों का पूजन आरम्भ हुआ।<sup>1</sup> माता की प्रजनन शक्ति, जो सभ्यता की निरन्तरता का मूलाधार है, मातृदेवी के रूप में उनके पूजन का मुख्य कारण रही है। देवी पूजन का दूसरा स्वरूप शक्ति पूजन के रूप में प्रकट हुआ है। शक्ति पूजन के अन्तर्गत विभिन्न देवताओं की क्रियाशीलता उनकी शक्तियों में निहित मानी गयी, तदनुरूप सभी प्रमुख देवताओं की अलग-अलग शक्तियों की कल्पना की गयी। इसी कारण स्वयं शिव भी शक्ति के बना शव या निष्क्रिय बताये गये हैं। योनि-पट्ट पर स्थापित शिवलिंग और अर्द्धनारीश्वर स्वरूप की परिकल्पना वस्तुतः शिव-शक्ति या प्रकृति-पुरुष के समन्वय की परिचायक है।<sup>2</sup> मनुष्य की विभिन्न प्रकार की शक्तियों को प्राप्त करने की अनन्त इच्छा ने शक्ति की उपासना को व्यापक आयाम दिया। इसमें राजनीतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों और सोच को भी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। विदेशी आक्रमणकर्ताओं के प्रतिरोध, आपसी संघर्ष एवं स्वयं के व्यक्तिगत सामर्थ्य में वृद्धि की इच्छा के कारण शक्ति के अलग-अलग रूपों को व्यापक जन स्वीकृति प्राप्त हुई। भारतीय राजनीतिक परिदृश्य में जैसे-जैसे बाहर की आक्रमक चुनौतियां बढ़ती गयीं वैसे-वैसे प्रतिरोधक और मारक शक्तियों की आवश्यकता भी बढ़ती गयी।<sup>3</sup> फलस्वरूप दुर्गा, काली और







महिषमर्दिनी रूपों की कल्पना की गयी जो भारतीय समाज के लिए अजस्र शक्ति की प्रेरणा स्रोत बनी।

गुप्तकाल तक शक्ति पूजा के क्रमिक विकास के फलस्वरूप शक्ति के उपासकों का एक स्वतन्त्र शाक्त सम्प्रदाय भी बना। कुषाणकाल के बाद मातृका तथा शक्ति पूजन के बीच समन्वय की स्थापना हुई। गुप्तकाल तक मातृकाएं विष्णु, शिव, ब्रह्मा, कार्तिकेय, इन्द्र आदि ब्राह्मण देवों की शक्तियों के रूप में परिवर्तित हो गयीं। इसी कारण मूर्तियों में इनके साथ सम्बन्धित देवताओं के वाहन और आयुध प्रदर्शित किये गये। साथ ही मातृकाओं की गोद में बालक दिखाकर उनके मातृपक्ष को भी उजागर किया गया। ग्रन्थों में शक्तियों को सर्वव्यापी, सर्वदर्शी एवं सर्वशक्तिमान कहा गया है।<sup>4</sup>

देवी के वाहन के रूप में सिंह (दुर्गा, महिषमर्दिनी, उमा), गोधा (गौरी, पार्वती), पद्म (लक्ष्मी), हंस (सरस्वती), मयूर (कौमारी), प्रेत या शव (चामुण्डा), गर्दभ (शीतला) के सन्दर्भ साहित्य और शिल्प दोनों में प्राप्त होते हैं।<sup>5</sup>

देवी या शक्ति की मूर्तियों को मुख्यतः सामान्य या सौम्य तथा उग्र या संहारक इन दो वर्गों में विभाजित किया गया है। विभिन्न संहारक स्वरूपों में देवी के हाथों में त्रिशूल या शूल, धनुष, बाण, पाश, अंकुश, शंख, चक्र, खट्वांग एवं कपाल-पात्र जैसे आयुध प्रदर्शित हैं तथा एक हाथ अभय या वरद-मुद्रा में देखा जा सकता है। संहारक स्वरूपों में अभय या वरद मुद्रा देवी के सर्वकल्याण और असुरों एवं दुष्टात्माओं के संहार द्वारा भक्तों को अभय-दान और इच्छित वरदान देने का भाव व्यक्त करता है।<sup>6</sup> उग्र स्वरूपों में महिषमर्दिनी, दुर्गा, काली, चामुण्डा एवं देवी के सौम्य रूप में लक्ष्मी एवं क्षमा (पद्मधारिणी), सरस्वती (पुस्तक एवं वीणाधारिणी), गौरी, पार्वती (शिवलिंग या शिव एवं गणेश की







आकृतियां धारण किये), गंगा-यमुना (कलश एवं पद्मधारिणी) तथा अन्नपूर्णा मुख्य हैं।

भारतीय शिल्प में लगभग सातवीं शती ई. के बाद से शक्ति के विविध रूपों का शिल्पांकन हुआ जिनके विविधतापूर्ण प्रभूत उदाहरण ओसियां, बाडोली, खजुराहो, भुवनेश्वर, भेड़ाघाट, हिंगलाजगढ़, हीरपुर, बादामी, अयहोल, एलोरा, कांचीपुरम्, महाबलीपुरम्, तंजौर, गंगैकोण्डचोलपुरम्, पट्टडकल, हलेबिड, बेलूर, सोमनाथ, तथा अमृतापुर एवं अन्य अनेक स्थलों से मिले हैं।<sup>7</sup>

### गंगा-यमुना

पवित्र नदियों के रूप में गंगा और यमुना के महत्व ने उनके दैवीकरण का मार्ग प्रशस्त किया। गंगा पवित्रता और यमुना भक्ति की सूचक है। गुप्तकाल में मन्दिरों के निर्माण की परम्परा के प्रारम्भ के साथ ही (देवगढ का दशावतार मन्दिर) मन्दिरों के प्रवेशद्वार पर एक ओर मकरवाहिनी गंगा और दूसरी ओर कूर्मवाहिनी यमुना का निरूपण प्रारम्भ हुआ। गंगा के विवाहिता होने के कारण उन्हें रूपवती विवाहिता स्त्री के रूप में और यमुना के अविवाहिता होने के कारण उन्हें तरुणी रूप में दिखाने का निर्देश मिलता है। मध्यकाल में सभी क्षेत्रों के ब्राह्मण और जैन मंदिरों की द्वार-शाखाओं पर नीचे एक ओर मकरवाहिनी गंगा और दूसरी ओर कूर्मवाहिनी यमुना की स्थानक मूर्तियां निरूपित हुईं। गंगा और यमुना के मस्तक के ऊपर सामान्यतः छत्र और उनके एक हाथ में कलश या पद्म प्रदर्शित है जबकि दूसरा हाथ सामान्यतः नीचे लटका या कटि पर स्थित है।<sup>8</sup> एलोरा के कैलाश मंदिर में गंगा, यमुना व सरस्वती की मूर्तियां एक साथ उकेरी हैं जो भारतीय परम्परा में पवित्रता, भक्ति और ज्ञान के समन्वय का मूर्तिमान रूप है। गंगा और यमुना की श्रेष्ठतम स्वतन्त्र मूर्तियों के उदाहरण अहिछत्रा से प्राप्त गुप्तकालीन मृणमूर्तियां हैं जो वर्तमान में राष्ट्रीय संग्रहालय,







दिल्ली में संगृहीत हैं। इन सर्वाभूषित मनोहारी उदाहरणों में गंगा और यमुना त्रिभंग में क्रमशः मकर और कूर्म वाहनों पर खड़ी हैं।

### नवदुर्गा

आगमों एवं पुराणों में दुर्गा के नौ अलग-अलग स्वरूपों का उल्लेख मिलता है। आगम ग्रन्थों में दुर्गा का वाहन सामान्यतः सिंह बताया गया है और देवी को महिष की कटी हुई गर्दन पर दिखाने का निर्देश दिया गया है। किन्तु चतुर्भुजा या उससे अधिक हाथों वाली सिंहवाहना दुर्गा की सामान्य मूर्तियों के उदाहरण बादामी, खजुराहो (लक्ष्मण और विश्वनाथ मन्दिर), एलोरा और हिंगलाजगढ़ से मिले हैं। एलोरा के कैलाश मन्दिर तथा गुफा संख्या 14 और 29 की सिंहवाहना दुर्गा की मूर्तियों में करों में सामान्यतः घण्टा और त्रिशूल प्रदर्शित हैं।<sup>9</sup>

### गौरी

गौरी शिव की शक्ति या उमा पार्वती के विभिन्न रूपों का समुच्चय है जिसे सामान्यतः वरद या अभय-मुद्रा, अक्षमाला, पद्म और कमण्डलु से युक्त दर्शाया गया है। दक्षिण भारतीय ग्रन्थों में द्वादश-गौरी की कल्पना मिलती है। जिनके मुख्य रूपों में उमा, पार्वती, रम्भा, तोतला तथा त्रिपुरा के नाम उल्लेखनीय हैं। विष्णुधर्मोत्तर पुराण<sup>10</sup> में महेश्वर या शिव से संबंधित मातृदेवी के कुमारी स्वरूप को गौरी कहा गया है।

द्वादश गौरी के सामूहिक उत्कीर्णन का विशिष्ट उदाहरण मोढेरा के सूर्य मन्दिर की बाह्य भित्ति की रथिकाओं पर उपलब्ध है। वर्तमान में मोढेरा के सूर्य मंदिर की बारह रथिकाओं की चतुर्भुज देवियों में से केवल दस आकृतियां ही सुरक्षित हैं और उनमें भी देवियों के अधिकांश हाथ खण्डित हैं।<sup>11</sup> फलतः देवियों







की निश्चित पहचान सम्भव नहीं है। हिंगलाजगढ से गौरी के द्वादश रूपों में से नौ स्वरूपों की मूर्तियां मिली हैं। परमारकालीन (11 वीं शती ई.) ये मूर्तियां वर्तमान में इन्दौर संग्रहालय में सुरक्षित हैं। इनमें उमा, पार्वती, गौरी ललिता, श्रिया, कृष्णा, सावित्री, त्रिषण्डा और तोतला स्वरूपों की मूर्तियां हैं।

### पार्वती

द्वादश गौरी रूपों में पार्वती स्वरूप ही भारतीय शिल्प में सर्वाधिक लोकप्रिय था जिसके उदाहरण प्रायः सभी मध्ययुगीन कला केन्द्रों पर मिलते हैं। स्वतन्त्र रूप में पार्वती का शिल्पांकन गुप्तकाल के बाद प्रारम्भ हुआ। पूर्व मध्यकाल की कई मूर्तियों में परम्परानुरूप गोधावाहना पार्वती के दोनों ओर अग्निकुण्डों तथा उनके दो हाथों में शिवलिंग और गणेश (या कार्तिकेय) का अंकन मिलता है।<sup>12</sup> पार्वती के पंचतपों का अंकन करने वाली इन चतुर्भुजी समभंग मूर्तियों में निचले दो करों में वरदाक्ष और जलपात्र द्रष्टव्य है। दोनों पार्श्वों में दो-दो के समूह के चार अग्निकुण्ड (अधिकांशतः मानवाकार ज्वालामय अकग्न, अभय और जल-पात्र से युक्त आकृतियों के रूप में) उत्कीर्ण हैं और पांचवें अग्नि के रूप में सूर्य की कल्पना की गयी है जो दिखाया नहीं जाता।<sup>13</sup> कुमारसम्भवम् एवं अन्य ग्रन्थों में शिव की प्राप्ति हेतु पार्वती के पंचतप करने का सन्दर्भ मिलता है। आठवीं-नवीं शती ई. के प्रतिहार मंदिरों (ओसियां, आबनेरी) में पार्वती की कई मूर्तियां देखी जा सकती हैं। नरेसर (मुरैना, म. प्र. मन्दिर संख्या 18, 20, 22, 23), बटेसर (भूतेश्वर मन्दिर), अमरोल (ग्वालियर), महुआ, तेरही (शिवपुरी), भदोह, पठारी (विदिशा), हिंगलाजगढ, चित्तौड़गढ तथा इन्दौर (गुना) से पार्वती की पंचतप स्वरूप वाली चतुर्भुजी मूर्तियों (10वीं-12वीं शती ई.) के कई उदाहरण मिले हैं।<sup>14</sup>







नवीं शती ई. की एक मूर्ति में पार्वती के पंचाग्नितप का अंकन हुआ है। पद्म पर खड़ी एवं जटाजूट तथा अन्य अलंकरणों से सज्जित देवी के चारों हाथ खण्डित हैं किन्तु कन्धे के समीप अग्निकुण्ड और कृशोदर साधु आकृतियों को अग्निकुण्ड के हव्य की सामग्री डालते हुए दिखया गया है। देवी के करों में अवस्थित गणेश और कार्तिकेय तथा परिकर में अग्निकुण्ड और छः शिवलिंग भी द्रष्टव्य हैं।<sup>15</sup> पार्वती के पंचाग्नितप से संबंधित दो उदाहरण बड़ौदा संग्रहालय में हैं। एक उदाहरण में चतुर्भुजा पार्वती खड़ी है जिनके दोनों ओर अग्निकुण्ड और ऊपर की ओर शिवलिंग और गणेश की आकृतियां बनी हैं। रोडा से प्राप्त दूसरी आसन मूर्ति में ध्यान-मुद्रा में बैठी चतुर्भुजा देवी के ऊर्ध्व कर पद्म से युक्त हैं। पद्म पर शिवलिंग और गणेश की आकृतियां तथा दोनों ओर पूर्ववत् अग्निकुण्ड बने हैं।

खजुराहो में गोधा और सिंहवाहना पार्वती की कई मूर्तियां पार्वती विश्वनाथ, दूलादेव एवं कन्दरिया महादेव मन्दिरों तथा स्थानीय संग्रहालयों में हैं।

### महिषमर्दिनी

देवी या शक्ति के विभिन्न स्वरूपों में महिषमर्दिनी स्वरूप शक्ति समुच्चय का प्रतीक है और इसी कारण इसकी सर्वाधिक मूर्तियां उकेरी गयी हैं। दुर्गापूजा के अवसर पर आज भी महिषमर्दिनी पूजन की परम्परा विशेषरूप से प्रचलित है। विभिन्न पुराणों में दुर्गा तथा महिषासुर के बीच हुए युद्ध की सविस्तार चर्चा मिलती है।<sup>16</sup> महिषासुर का संहार करने के कारण ही देवी का नाम महिषमर्दिनी या महिषासुरमर्दिनी पड़ा।

प्रारम्भिक मूर्तियों में असुर को महिष देहधारी और देवी को शूल या त्रिशूल से उस पर प्रहार करते दिखाया गया है। किन्तु मध्यकालीन मूर्तियों में लगभग सभी स्थलों पर महिष देहधारी असुर की कटी हुई गर्दन से मानव देहधारी असुर







को निकलते हुए ओर देवी के त्रिशूल का प्रहार रोकने की असफल चेष्टा करनते हुए आमूर्तित किया गया है।

महिषमर्दिनी की मूर्तियों का निर्माण कुषाणकाल में प्रारम्भ हुआ जो गुप्तकाल में और अधिक लोकप्रिय हुआ। गुप्तकाल के बाद प्रतिमालक्षण की दृष्टि से महिषमर्दिनी मूर्तियों का और अधिक विकास हुआ और देवी की चार से 20 हाथों वाली मूर्तियां विभिन्न कलाकेन्द्रों पर उत्कीर्ण हुई हैं।<sup>17</sup> मध्यकाल में शायद ही कोई ऐसा कलाकेन्द्र रहा हो जहां महिषमर्दिनी की मूर्ति न उकेरी गयी हो।

महिषमर्दिनी मूर्तियों की दृष्टि से उदयपुर के समीप स्थित जगत का अम्बिका मंदिर (961 ई.) निःसन्देह सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। इस मंदिर पर देवी की लगभग आठ मूर्तियां हैं जिनमें कुषाण-गुप्तकालीन तथा परवर्ती शैली की विकसित लक्षणों वाली मूर्तियों के विविधतापूर्ण उदाहरण बाह्य भित्ति की रथिकाओं में उत्कीर्ण हैं। सिंहवाहना देवी को कभी महिष देहधारी असुर से और कभी महिष के मस्तक और मानव देहधारी कभी केवल मानव देहधारी तथा कभी महिष के मस्तक और मानव देहधारी असुर से युद्धरत या उस पर शूल अथवा त्रिशूल या धनुष-बाण से प्रहार करते हुए निरूपित किया गया हैं

इस प्रकार लगभग सम्पूर्ण भारतवर्ष से महिषमर्दिनी की असंख्य मूर्तियों के उदाहरण मिले हैं जिनमें हाथों की संख्या और आयुधों एवं परिकर की ब्रह्माणी, शिवा तथा अन्य देवियों की आकृतियों की दृष्टि से विकास दिखायी देता है।<sup>18</sup> आठवीं शती ई. और बाद की मूर्तियों में महिषमर्दिनी को सामान्यतः ऊपर वर्णित विशेषताओं के साथ निरूपित किया गया है। जिसमें महिषासुर की आकृतियां अलग-अलग रूपों एवं स्थितियों में उत्कीर्ण हैं।







## सप्त या अष्टमातृका

सप्त या अष्टमातृकाओं के शिल्पांकन की परम्परा कुषाणकाल में प्रारम्भ हुई। सप्तमातृका पूजन की परम्परा में मातृ-पूजन की प्राचीन परम्परा के साथ ही शक्ति पूजन के भाव को भी संश्लिष्ट किया गया और अलग-अलग ब्राह्मण देवताओं की शक्तियों के सामूहिक रूपांकन के माध्यम से सम्भवतः संघात या समन्वय के भाव को व्यक्त किया गया। कुषाणकालीन मातृका फलकों पर समान लक्षणों वाली द्विभुजी मातृकाओं के साथ दोनों ओर आयुध पुरुषों का अंकन हुआ है।<sup>19</sup> कुषाण काल में ही मातृकाओं के साथ बालकों का उकेरन प्रारम्भ हुआ। किन्तु मातृकाओं के साथ स्वतन्त्र एवं पारम्परिक आयुधों तथा वाहनों का उत्कीर्णन सर्वप्रथम गुप्तकाल में प्रारम्भ हुआ। मधुकाल में प्रतिमालक्षण की दृष्टि से मातृकाओं के लक्षणों में और अधिक विकास हुआ। मूर्त उदाहरणों में इन्हें सात या आठ के समूह में एक पीठिका पर सामान्यतः ललितासीन या त्रिभंग में और कभी-कभी नृत्यरत् (खजुराहो और उड़ीसा) रूपायित किया गया। मातृका फलकों पर एक ओर वीणाधारी विरभद्र और दूसरी ओर मोदकपात्र से युक्त गजमुख गणेश का नियमित अंकन हुआ है जो किन्हीं अर्थों में इन मातृकाओं को व्यापक रूप में शैव परिवार से सम्बद्ध करता है। सातवीं से 13 वीं शती ई. के मध्य लगभग सभी प्रमुख कलाकेन्द्रों पर सप्त या अष्ट मातृका फलकों के उदाहरण मिलते हैं।<sup>20</sup> इन मातृकाओं को शास्त्रीय परम्परा के अनुरूप फलकों पर सम्बन्धित देवताओं के आयुधों और वाहनों सहित निरूपित किया गया है।

विष्णुधर्मोत्तर<sup>21</sup>, मार्कण्डेय पुराण<sup>22</sup> (अध्याय 13, देवीमाहात्म्य), अपराजितपृच्छा एवं रूपमण्डन में सात या आठ मातृकाओं के नाम तथा लक्षण बताये गये हैं। इनमें ब्रह्माणी, शिवा (या महेश्वरी), वैष्णवी, ऐन्द्री या इन्द्राणी, कौमारी, वाराही, और चामुण्डा या चण्डिका के नाम हैं। कभी कभी आठवीं मातृका







के रूप में नारसिंही या वैनायकी और कभी सप्तमातृका समूह में वाराही के स्थान पर नारसिंही का उल्लेख मिलता है।

मातृकाओं की उत्पत्ति के सम्बन्ध में दो कथाएं ग्रन्थों में मिलती हैं। एक कथा के अनुसार अम्बिका के रक्तबीज नाम के असुर के साथ हुए युद्ध के समय इन मातृकाओं ने युद्ध में देवी का साथ दिया था। दूसरी कथा के अनुसार अंधकासुर संहार के समय शिव के सहयोग के लिए प्रमुख देवताओं ने अपनी-अपनी शक्तियों की रचना की जिन्होंने युद्ध के समय शिव का साथ दिया। उपर्युक्त कथा के कारण ही मातृकाओं को लाक्षणिक विशेषताएं और वाहन, सम्बन्धित देवता के समान निरूपित हुए।<sup>23</sup> विष्णु और शिव की विशेष प्रतिष्ठा के कारण सप्त या अष्टमातृकाओं की सूची में इनसे सम्बन्धित एक से अधिक शक्तियों को रखा गया। वैष्णवी के अतिरिक्त मातृका समूह में वाराही और कभी-कभी नारसिंही का निरूपण हुआ है जो विष्णु से सम्बन्धित है। इसी प्रकार शिवा या महेश्वरी के अतिरिक्त शिव से सम्बन्धित चामुण्डा को भी मातृकाओं की सूची में रखा गया है। गणेश और कार्तिकेय से सम्बन्धित मातृकाओं को भी शैव परिवार में शामिल किया जाता है।

प्रारम्भ में सप्तमातृका समूह में सामान्यतः चामुण्डा के अतिरिक्त अन्य सभी के साथ बालक का अंकन हुआ है जो मातृस्वरूप को इंगित करता है। किन्तु मध्यकाल में शक्ति पूजन की प्रधानत के कारण मातृकाओं के साथ बालकों को दिखाने की परम्परा बहुत नियमित नहीं रही।<sup>24</sup> माता सर्वदा सौम्य-स्वरूप होती है किन्तु चामुण्डा के भयंकर-दर्शना और कंकाल स्वरूपा होने के कारण उनके अधिकांशतः शक्ति पूजन के रूप में व्यवहृत थी।







मध्यकाल में कुछ स्थलों पर मातृकाओं की नृत्यरत् मूर्तियां भी उकेरी गयी जिनके उदाहरण मध्यप्रदेश के भेड़ाघात और खजुराहो (दूलादेव मन्दिर), उड़ीसा में वाराही मन्दिर तथा कङ्क अन्य स्थलों से मिले हैं।

फलकों के अतिरिक्त मातृकाओं की कई स्वतन्त्र मूर्तियां भी मन्दिरों एवं राज्य संग्रहालय, भुवनेश्वर में देखी जा सकती है। जिनमें प्रतिमालक्षण की दृष्टि से सर्वाधिकविविधता चामुण्डा के निरूपण में मिलती है। चामुण्डा को 4, 6, 8 और 10 हाथों वाला दिखाया गया है। कंकाल-स्वरूपा कृशोदरी और चतुर्भुजा चामुण्डा परशुरामेश्वर मंदिर के उदाहरण में उलूकवाहना और फल, पुष्प, त्रिशूल और खप्पर से युक्त है।<sup>25</sup>

विश्वनाथ (1002 ई.) एवं कन्दरिया महादेव (1050 ई.) मन्दिरों के अधिष्ठान की चारों ओर की स्वतन्त्र रथिकाओं में मातृकाओं को गणेश एवं वीरभद्र के साथ नृत्यरत् दिखाया गया है। दक्षिण-पूर्वी रथिका में गणेश की मूर्ति है और प्रदक्षिणा क्रम में रथिकाओं में चामुण्डा, इन्द्राणी, वाराही, वैष्णवी, कौमारी, माहेश्वरी, ब्राह्मी और अन्त में उत्तर-पूर्वी रथिका में वीरभद्र की मूर्तियां उकेरी हैं। खजुराहो में सप्तमातृकाओं की आकृतियां केवल शिव से सम्बन्धित मन्दिरों पर ही उकेरी हैं जो शैव शाक्त देवों के पारस्परिक सामंजस्य का सूचक हैं।<sup>26</sup> शिल्पशास्त्रों में सप्तमातृकाओं को चार, छह या अधिक हाथों वाला लक्षित किया गया है, जबकि खजुराहो के प्रारम्भिक उदाहरण (10 वीं शती ई.) में सप्तमातृकाएं द्विभुजी और तत्पश्चात् चतुर्भुजी निरूपित हैं। केवल एक स्वतन्त्र वैष्णवी मूर्ति में चार से अधिक हाथ दिखाये गये हैं। चामुण्डा स्वतन्त्र एवं फलक दोनों ही उदाहरणों में सर्वदा चार से अधिक हाथों वाली हैं।<sup>27</sup>

कर्नाटक के होयसल मंदिरों (12वीं – 13वीं शती ई.) में अनेकत्र सप्त या अष्टामातृका फलकों के उदाहरण देखे जा सकते हैं। मयूरवाहना कौमारी पुस्तक,







अंकुश, पाश (शूल अनुपस्थित), गरुडवाहना वैष्णवी चक्र, पद्म, गदा, शंख, नरवाहना वाराही खड्ग, खेटक, जलपात्र, गजवाहना ऐन्द्री आया, शूल, अंकुश, वद, गरुडवाहना वैष्णवी चक्र, पद्म तथा महिषवाहना चामुण्डा खड्ग, त्रिशूल, खेटक ओर कपाल-पात्र धारिणी निरूपित है।

### सरस्वती

विद्या, बुद्धि और संगीत की अधिष्ठात्री देवी के रूप में सरस्वती को प्रारम्भ से ही विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त थी। सरस्वती को वाक्, वाग्देवी, वागीश्वरी, वाणी, शारदा, भारती आदि नामों से अभिहित किया गया है। बौद्ध और जैन धर्मों में भी विद्या और बुद्धि की देवी के रूप में सरस्वती विशेष लोकप्रिय रही है। यह विशेष महत्व की बात है कि सरस्वती की प्रारंभिकतम स्वतन्त्र मूर्ति भी जैन परम्परा में बनी। 132 ई. की जैन सरस्वती मूर्ति मथुरा के कंकाली टीला से मिली है।<sup>28</sup>

सरस्वती को प्रारम्भ में ज्ञान और बुद्धि की देवी के रूप में कल्पित किया गया। इसी कारण उनके साथ वाहन के रूप में हंस तथा करों में अक्षमाला, पुस्तक एवं कमण्डलु दिखाया गया।<sup>29</sup> बाद में ललितकलाओं विशेषकर संगीत और देवी के रूप में भी प्रतिष्ठित होने के बाद, देवी के हाथ में वीणा और वाहन के रूप में मयूर का उत्कीर्णन भी प्रारम्भ हुआ।

लगभग सभी ग्रन्थों में सरस्वती पद्म पर आसीन या खड़ी ओर चतुर्भुजी निरूपित हैं। हंसवाहना देवी के करों में सामान्यतः अभय या वरद मुद्रा (वरदाक्ष), अक्षमाला, पद्म, पुस्तक, वीणा, कमण्डलु के प्रदर्शन का विधान है।

प्राचीन परम्परा की देवी होने के बाद भी सरस्वती का उत्कीर्णन लक्ष्मी एवं गजलक्ष्मी की अपेक्षा कुछ बाद में प्रारम्भ हुआ।<sup>30</sup> लगभग आठवीं शती ई. से सभी क्षेत्रों में यथेष्ट संख्या में सरस्वती की स्वतन्त्र मूर्तियाँ उकेरी गयी जिनके







उदाहरण मुख्यतः भवनेश्वर, खजुराहो, चांदपुर, मोढेरा, हलेबिड, बेलूर, सोमनाथपुर, जावागल, हासाहडालु, तंजौर (बृहदीश्वर मन्दिर), गडग, बागली तथा गुजरात, राजस्थान, बंगाल और बिहार के अन्य विभिन्न स्थलों से प्राप्त हुए हैं।

## लक्ष्मी

लक्ष्मी को समृद्धि, सौभाग्य और सौन्दर्य का प्रतीक माना गया है तथा श्री, पद्मा, कमला आदि कई नामों से सम्बोधित किया गया है। भारत में आज भी विभिन्न अवसरों पर उनके पूजन की परम्परा प्रचलित है। जिनमें दीपावली सर्वप्रमुख है। वर्तमान युग की भौतिकवादी प्रवृत्ति के फलस्वरूप समृद्धि, सौभाग्य और ऐश्वर्य की देवी लक्ष्मी का महत्व निरन्तर बढ़ता जा रहा है। लक्ष्मी बौद्ध और जैन धर्मों में भी लोकप्रिय हैं। भरहुत एवं सांची के बौद्ध स्तूपों पर गजलक्ष्मी का प्रारम्भिक अंकन इसका साक्ष्य है।<sup>31</sup>

महाकाव्यों में श्री और लक्ष्मी दो अलग-अलग देवियों के रूप में वर्णित हैं। पुराणों के समय तक श्री, लक्ष्मी और विष्णु का सम्बन्ध पूरी तरह स्थापित हो गया था। और सागरमन्थन के फलस्वरूप अन्य निधियों के साथ लक्ष्मी के साथ लक्ष्मी को भी प्रकट होतने की बात सर्वमान्य हो चुकी थी। सामान्यतः लक्ष्मी को दो हाथों में पद्म लिये (पद्महस्ता) और पद्म पर आसीन या खड़ी निरूपित किया गया है। वाहन के रूप में कहीं-कहीं उलूक का भी उल्लेख है। लक्ष्मी के साथ गणेश पूजन की परम्परा के मूल में भी लक्ष्मी पर बुद्धि के अंकुश या नियंत्रण का भाव निहित है।

विष्णुधर्मोत्तर पुराण<sup>32</sup> में अष्टदल कमल से युक्त सिंहासन पर विराजमान लक्ष्मी के चार हाथों में सनाल-पद्म, अमृतघट, बिल्वफल और शंख का उल्लेख है। रूपमण्डन में लक्ष्मी और महालक्ष्मी का अलग-अलग निरूपण हुआ है। लक्ष्मी के दोनों ऊपरी हाथों में पद्म हैं जबकि निचले बायें अमृतघट और दाहिने में







मातुलिंग हैं। महालक्ष्मी के ऊपरी हाथों में कौमोदकी गदा और खेटक तथा नीचे के हाथों में पात्र और श्रीफल के प्रदर्शन का निर्देश है। लक्ष्मी के हाथ का शंख सौभाग्य, बिल्वफल सर्वलोक, अमृतघट जल के सार, पद्म वैभव तथा अभिषेक करने वाली गज आकृतियां शंख और पद्मनिधियों की सूचक मानी गयी हैं।

भारतीय कला में स्वतन्त्र मूर्तियों के रूप में एंव मुद्राओं पर दूसरी –पहली शती ई.पू. से ही लक्ष्मी के गजलक्ष्मी स्वरूप का अंकन मिलने लगता है। इनके प्रारम्भिक उदाहरण, भरहुत, सांची, बोधगया, मथुरा, अमरावती में देखे जा सकते हैं। गुप्तकाल में लक्ष्मी को राष्ट्रीय देवी के रूप में मान्यता मिली जो वैष्णव धर्मावलम्बी गुप्त शासकों की मुद्राओं और मुहरों पर लक्ष्मी के अनेकशः अंकन से स्पष्ट है।<sup>33</sup> गुप्त मूर्तियों, मुद्राओं और मुहरों पर लक्ष्मी और गजलक्ष्मी के विविध रूपों का रूपायनहुआ है जिनमें द्विभुजा लक्ष्मी के एक या दोनों हाथों में पद्म प्रदर्शित है। गुप्तोत्तर एवं मध्यकाल में लक्ष्मी की मूर्तियां अधिक व्यापक स्तर पर बनीं जिनमें लक्ष्मी और गजलक्ष्मी स्वरूपों की स्वतन्त्र मूर्तियों के साथ ही लक्ष्मी-नारायण तथा शेषशायी विष्णु स्वरूपों में भी लक्ष्मी का अंकन देखा जा सकता है।

गुप्तकालीन परम्परा में ओसियां एवं खजुराहो के कुछ मध्यकालीन उदाहरणों में गजलक्ष्मी को सिंहवाहना भी दिखाया गया है। गजलक्ष्मी के पद्मपीठ के नीचे अथवा चरणों के पास एकया दो सिंह आकृतियां उकेरी हैं। ऐसी मूर्तियों में खजुराहो के विश्वनाथ मन्दिर की जगती की चतुर्भुजा लक्ष्मी मूर्ति विशेषतः उल्लेखनीय हैं ललितासीन देवी के ऊपरी हाथों में सनाल-पद्म है जिनके ऊपर देवी का अभिषेक करती दो गजाकृतियां बनी हैं।<sup>34</sup> देवी का निचला दाहिना हाथ अक्षमाला-युक्त अभयमुद्रा में है और बायें में अमृतघट हैं। मूर्ति के पादपीठ पर सिंह की आकृति उत्कीर्ण है।







सन्दर्भ ग्रन्थ एवं पादटिप्पणियां —

18. वायु पुराण 9/84
19. विष्णु पुराण 5/1/70-81
20. वायु पुराण 96/205
21. मत्स्य पुराण 157/15-16
22. वायु पुराण 101/298
23. वायु पुराण 30/163
24. ब्रह्माण्ड पुराण 4/6/6
25. विष्णु पुराण 1/9102/105
26. मत्स्य पुराण 301/40-47
27. विष्णु पुराण 1/8/19
28. जे० सी० हार्क गुप्त, स्क० चि० 91-92
29. डी. सी. सरकार, शक्ति कल्ट इन वेस्टर्न इण्डिया शक्ति कल्प एण्ड तारासंपादित, डी.  
सी. सरकार, कलकत्ता, पृ. 87-88
30. डॉ० अग्रवाल, भारतीय कला, पृ० 320
31. कुमार, 7, 30 और 38, 6, 80 ,81
32. का. इ. इ. 3 पृ. 76
33. विष्णुधर्मोत्तर पुराण, 71.3-5
34. रूपमण्डन 5.26-32
35. टी. ए. गोपीनाथ राव, पूर्व निर्दिष्ट, खण्ड -2, भाग-2, पृ० 424-32
36. वही
37. अपराजितपृच्छा, 212.35-37
38. बृहत्संहिता, 57.41







# गणेश एवं कार्तिकेय प्रतिमाएं







## गणेश

विघ्ननाशक और सिद्धिदायक गणेश या गणपति की विनायक के रूप में पूजन की परम्परा प्राचीन है किन्तु अम्बिका पुत्र के रूप में गणेश या गणपति का पूजन बाद में प्रारम्भ हुआ। ब्राह्मण धर्म के पांच प्रमुख सम्प्रदायों में गणेश के उपासकों का एक स्वतन्त्र गाणपत्य सम्प्रदाय भी था जिसका विकास भण्डाकरकर के अनुसार पाचवीं से आठवीं शती ई. के बीच हुआ। वर्तमान में सभी शुभाशुभ कार्यों के पूर्व अनिवार्य रूप से गणेश का पूजन अर्चन किया जाता है। समृद्धि की देवी लक्ष्मी के साथ गणेश का पूजन-अर्चन चंचला लक्ष्मी पर बुद्धि के देवता के नियंत्रण या अंकुश का सूचक है। शिव से सम्बन्धित होने के बाद ही उन्हें गणों का प्रमुख बनाया गया और गणनायक या गणपति का गया। ब्राह्मण धर्म के साथ गणेश जैन और बौद्ध धर्मों में भी लोकप्रिय हैं। वज्रयान के प्रभाव के फलस्वरूप मध्यकाल में पूर्वी भारत में ब्राह्मण देवताओं के प्रति बौद्धों की कटुता के कारण गणेश को विघ्न के देवता के रूप में बौद्ध देवी देवताओं के पैरों के नीचे दिखाया गया है।

किसी न किसी रूप में कुषाणकाल से ही गणेश की मूर्तियां बनने लगीं। किन्तु लगभग आठवीं शती ई. से गणेश की मूर्तियों का निर्माण सभी क्षेत्रों में लोकप्रिय हुआ।

विष्णुधर्मोत्तर<sup>1</sup> में चतुर्भुज विनायक के गजमुख होने पर दाहिने हाथों में शूल और अक्षमाला तथा बायें में मोदक-पात्र और परशु धारण करने का उल्लेख है। लम्बोदर, शूर्पकर्ण या व्याघ्रचर्म एवं नाग यज्ञोपवीतधारी विनायक को एकदन्त बताया गया है। चतुर्भुज गणेश के एक हाथ में मोदक-पात्र तथा वाहन के रूप में मूषक का उल्लेख अधिकांश ग्रन्थों में मिलता है।<sup>2</sup> गणेश की शक्तियों के रूप में ऋद्धि एवं बुद्धि के अतिरिक्त भारती और श्री या बुद्धि और कुबुद्धि अथवा







विघ्नेश्वरी का उल्लेख हुआ है। मूर्तियों में गणेश को अधिकांशतः सूंड से मोदक पात्र से मोदक उठाते हुए दिखलाया गया है।

दारासुरम के ऐरावतेश्वर मंदिर के परिसर के संग्रहालय तथा नन्जानमोडु नामक स्थानों से मिली मूर्तियाँ मुख्य हैं इनमें गणेश का शुण्ड शक्ति की योनि का स्पर्श कर रहा है जबकि देवी का एक हाथ गणेश की जननेन्द्रिय पर है।<sup>3</sup>

हेरम्ब गणपति स्वरूप में गणेश पांच मुखों वाले होंगे जिसमें चार गजमुख चारों ओर और पांचवा मुख ऊपर की ओर होगा। मध्यकाल में एलोरा, भुवनेश्वर, खिचिंग (मयूरभंज), कन्नौज, ओसियां, खजुराहो, भेड़ाघाट तथा अन्य अनेक स्थलों पर गणेश की प्रभूत मूर्तियाँ बनीं।<sup>4</sup> इनमें मुख्यतः गणेश को अकेले, नृत्यरत या शक्ति सहित दिखाया गया है।

जबलपुर के भेड़ाघाट स्थित चौंसठ योगिनी मंदिर के प्रांगण में गौरीशंकर मंदिर में भी अष्टभुज गणेश की एक नृत मूर्ति है जिसमें आज एवं लय का सुन्दर समन्वय हुआ है। बारहवीं शती ई. की इस मूर्ति में पाशववर्ती दुंदुभि और मंजीरा वादकों की आकृतियाँ नृत्य के परिवेश को और भी स्वाभाविक बना रही है। नाग यज्ञोपवीतधारी गणेश के करों में व्याख्यान—मुद्रा, अक्षमाला, स्वदन्त, नाम (दो करों में), पद्म और मोदक—पात्र है।

प्रारम्भिक मूर्तियों में गणेश का मस्तक प्राकृतिक गज के रूप में बना है जिस पर किसी प्रकार का अलंकरण नहीं मिलता किन्तु बाद की मूर्तियों में करण्डमुकुट का अंकन देखा जा सकता है।

खजुराहो में गणेश की प्रभूत मूर्तियाँ हैं<sup>5</sup> जिनमें आसन एवं स्थानक एकल मूर्तियों के अतिरिक्त नृत एवं शक्ति गणेश मूर्तियाँ हैं। सर्वाधिक मूर्तियाँ लक्ष्मण, विश्वनाथ, कन्दरिया महादेव एवं दलादेव मंदिरों पर हैं। खजुराहो के संग्रहालयों में भी पर्याप्त मूर्तियाँ सुरक्षित हैं।







खजुराहो में शक्ति गणेश की भी तीन मूर्तियां हैं। खजुराहो संग्रहालय पर जगदम्बी मंदिर की इन तीन मूर्तियों से लक्ष्मी नारायण एवं उमा महेश्वर मूर्तियों की रीति में गणेश को विघ्नेश्वरी या लक्ष्मी के साथ आलिंगन मुद्रा में रूपायित किया गया है। चतुर्भुज गणेश के दो हाथों में मोदक पात्र और परशु हैं जबकि एक हाथ आलिंगन मुद्रा में है।

### कार्तिकेय

कार्तिकेय का वेदों में कोई उल्लेख नहीं मिलता है। सर्वप्रथम महाकाव्यों में उनके जन्म की कथा का विस्तार से वर्णन हुआ है। उन्हें कभी शिव पार्वती का पुत्र बताया गया है और कभी अग्नि और स्वाहा की सन्तति कहा गया है। कई स्थानों पर कार्तिकेय की माता के रूप में गंगा और कृतिकाओं का भी उल्लेख मिलता है।<sup>6</sup> पातंजलि के महाभाष्य में स्कन्द और विशाख का उल्लेख अलग-अलग देवताओं के रूप में हुआ है। कुषाण शासक हुविष्क की कुछ मुद्राओं पर भी तीन अलग अलग आकृतियां मिलती हैं। जिन्हें लेख में स्कन्दकुमार विशाख और महासेन कहा गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि कार्तिकेय की सृष्टि में लोक तत्वों एवं कई अलग अलग देवताओं का संयुक्त योगदान था जिसने कुषाणकाल के बाद एकीकृत रूप में कार्तिकेय नाम दिया गया। गुप्तकाल में कार्तिकेय का महत्व एक राष्ट्रीय देवता के रूप में प्रकट हुआ। स्कन्दगुप्त और कुमारगुप्त नामधारी गुप्तशासकों एवं उनकी कार्तिकेय प्रकार की मुद्राओं द्वारा कालिदास की रचना कुमारसम्भव से यह बात स्पष्ट होती है।

कार्तिकेय की उत्पत्ति से सम्बन्धित विभिन्न कथाओं के कारण उन्हें अलग अलग नामों से सम्बोधित किया गया है जिसमें स्कन्द, कुमार, विशाख, गुह्य, महासेन, सुब्रह्मण्यम एवं शक्तिधर मुख्य हैं।<sup>7</sup> कृतिकाओं की सन्तान होने के कारण उन्हें कार्तिकेय, 6 माताओं के पुत्र होने के कारण षाण्मातुर और 6 मुखों







से उनका स्तनपान करने के कारण षडनन या षण्मुख कहा गया है। कार्तिकेय मुख्यतः युद्ध के देवता है। इसी कारण युद्ध प्रिय यौधेय गणों के सिक्कों पर इनका अंकन योद्धा के रूप में हुआ है। गीता में श्री कृष्ण ने स्वयं को सेनानियों में स्कन्द के समान कहा है। कार्तिकेय के जन्म का हेतु तारकासुर का संहार रहा है।<sup>8</sup> जिसकी विस्तृत कथा कुमारसम्भव में है। तारकासुर के विरुद्ध युद्ध में कार्तिकेय ने देवसेना का नेतृत्व किया था, इसी कारण इन्हें सेनानी या देव सेनापति भी कहा गया है।

विष्णुधर्मोत्तर पुराण में कार्तिकेय के लक्षणों का विस्तारपूर्वक निरूपण हुआ है। इस ग्रन्थ में कार्तिकेय को षडानन, मयूरासीन, रक्तवस्त्रधारी तथा चतुर्भुज निरूपित किया गया है। उनके दो दायें हाथों में से एक में कुक्कुट और दूसरे में घण्ट है जबकि बायें हाथों में वैजयन्ती पताका और शक्ति है।

लगभग पहली—दूसरी शती ई. में कार्तिकेय का शिल्पांकन प्रारम्भ हुआ। जिसके उदाहरण यौधेय एवं कुषाण मुद्राओं पर तथा मूर्तियों पर मिलते हैं। गुप्तकाल में कार्तिकेय की कई मनोज्ञ स्वतन्त्र मूर्तियां बनीं जिसका एक उत्कृष्ट उदाहरण भारत कला भवन, वाराणसी में है। गुप्तकाल के बाद उत्तर भारत में कार्तिकेय का स्वतन्त्र महत्व लगभग समाप्त हो गया और इनकी पूजा तथा मूर्ति निर्माण मुख्यतः शिव परिवार के साथ किया जाने लगा।<sup>9</sup> किन्तु दक्षिण भारत में कार्तिकेय की उपासना और मूर्ति निर्माण का उत्तरोत्तर विकास होता गया और स्वतन्त्र देवता के रूप में उनकी प्रतिष्ठा हुई। आठवीं से बारहवीं शती ई. के मध्य शिव—पार्वती के पुत्र के रूप में कल्याण—सुन्दर, उमा—महेश्वर, गंगाधर, नटराज एवं अर्द्धनारीश्वर मूर्तियों में कार्तिकेय का अनेकशः रूपायन हुआ है जिनके मुख्य उदाहरण कन्नौज, एकट, एलोरा, भुवनेश्वर, खजुराहो, हिंगलाजगढ़ और एलिफैंटा से प्राप्त होते हैं।







कार्तिकेय की मध्यकालीन स्वतन्त्र मूर्तियों के विपुल उदाहरण अयहोल, ओसियां, मोढेरा भुवनेश्वर, खजुराहो, आबनेरी, एलोरा कांचीपुरम तथा होयसल मंदिरों सहित अन्य अनेक स्थलों से प्राप्त हुए हैं। इनमें अधिकांशतः कार्तिकेय को अकेले और एक या तीन मुखों (षण्मुख मूर्ति का भाव केवल समक्ष दर्शन के तीन मुखों द्वारा व्यक्त है) एवं मयूर वाहन वाला आमूर्तित किया गया है। चतुर्भुज या षड्भुज देवता शक्ति या शूल एवं कुक्कुट से युक्त दिखाये गये हैं। केवल कुछ ही उदाहरणों में कार्तिकेय, शक्ति देवसेना सहित निरूपित हैं

कार्तिकेय के साथ पुस्तक और पद्म का दिखाया जाना खजुराहो की मूर्तियों की विशेषता है जो उनके और पद्म का दिखाया जाना खजुराहो की मूर्तियों की विशेषता है जो उनके ब्रह्मशास्ता स्वरूप का निरूपण जान पड़ता है जिसके उदाहरण दक्षिण भारत में विशिष्टः लोकप्रिय थे।<sup>10</sup> कार्तिकेय के पार्श्वों में उनकी शक्तियां, देवसेना और वल्लि, भी आमूर्तित हैं।

देवसेना— कल्याण सुन्दर मूर्ति में देवसेना के साथ सुब्रह्मण्य के विवाह का दृश्य दिखाया जाता है। सम्भवतः यह शिव—विवाह से सम्बन्धित कल्याणसुन्दर मूर्ति का अनुकरण है। इसमें देवसेना ने पार्वती का स्थान ले लिया है। कन्यादान देने वाल के रूप में विष्णु के स्थान पर इन्द्र हैं। परन्तु पुरोहित के रूप में यहां भी ब्रह्मा ही आमूर्तित हैं। कार्तिकेय वर के रूप में है। ऐसी मूर्ति को वल्लि—कल्याण—सुन्दर मूर्ति भी कहते हैं। दक्षिण भारत में ऐसी मूर्तियों के पर्याप्त उदाहरण हैं।

इस प्रकार कार्तिकेय का अंकन मध्यकाल में न्यूनाधिक सभी क्षेत्रों में लोकप्रिय था। उत्तर भारत में ओसियां खजुराहो, एवं भुवनेश्वर जैसे स्थलों पर कार्तिकेय की प्रचूर संख्या में स्वतन्त्र मूर्तियां मिली हैं जिनमें कार्तिकेय को







सामान्यतः त्रिमुख, मयूरासीन, चतुर्भुज, षड्भुज या द्वादशभुज और शूलधारी दर्शाया गया है। कार्तिकेय के साथ त्रिशूल, पुस्तक कुक्कुट और वज्र आदि के प्रदर्शन में क्षेत्रीय विभिन्नता देखी जा सकती हैं। तमिलभाषियों के बची आज भी कार्तिकेय या मुरुगन एक प्रधान देवता है। वे पुरुष सौन्दर्य के प्रमाण हैं और कृष्ण की भांति असंख्य प्रेम गीतों के लक्ष्य हैं।







सन्दर्भ ग्रन्थ एवं पादटिप्पणियां –

1. विष्णुधर्मोत्तर पुराण, 71.3–5
2. रूपमण्डन 5.26–32
3. टी. ए. गोपीनाथ राव, पूर्व निर्दिष्ट, खण्ड –2, भाग–2, पृ० 424–32
4. वही
5. अपराजितपृच्छा, 212.35–37
6. बृहत्संहिता, 57.41
7. विष्णुधर्मोत्तर पुराण, 63.1–2
8. देवतामूर्ति प्रकरण, 5.94–97
9. रूपमण्डन, 3/55
10. विष्णुधर्मोत्तर पुराण, 81/2







# सन्दर्भ ग्रन्थ सूची







## सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. ऐतरेय ब्राह्मण, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, बनारस, अच्युत ग्रन्थमाला, बनारस।
2. तैत्तिरीय ब्राह्मण, आनन्द आश्रम, पूना, सन् 1930ई०
3. श्वेताश्वरोपनिषद्, गीताप्रेस गोरखपुर, सन् 1967ई०
4. मुंडकोपनिषद्, गीताप्रेस, गोरखपुर, सन् 1967 ई०
5. वाल्मीकि रामायण, गीताप्रेस गोरखपुर, सन् 1967 ई०
6. अग्नि पुराण, आनन्द आश्रम, पूना।
7. विष्णुधर्मोत्तर पुराण, बैकटेश्वर प्रेस, बम्बई, सं० 1996
8. विष्णु पुराण, गीताप्रेस, गोरखपुर।
9. पद्म पुराण, आनन्द आश्रम, पूना।
10. नारद पुराण, गीता प्रेस गोरखपुर
11. शतपथ ब्राह्मण, बर्त बेवर, लिपजिग 1924, चन्द्रकान्त तर्कालंकार
12. ब्रह्माण पुराण, हिन्दी अनुवाद, रामप्रताप त्रिपाठी, प्रयाग सं० 2003
13. मार्कण्डेय पुराण, अं अनुवाद एफ० ई० पार्जिटर, बि० ई०, कलकत्ता, 1905
14. विष्णुधर्मोत्तर पुराण, प्रिय बाला शाह, बड़ौदा, 1961

### ऐतिहासिक ग्रन्थ

1. प्राचीन भारत का राजनीतिक और सांस्कृतिक इतिहास, डॉ० आर० के० चौधरी।
2. राजतरंगिणी, प्रथम भाग, हिन्दी प्रचारक संस्थान बनारस, सन् 1969
3. मथुरा कला, वासुदेवशरण अग्रवाल, 1966
4. भारतीय कला और संस्कृति, भगवतशरण उपाध्याय, दिल्ली, 1965
5. वैष्णवधर्म, परशुराम चतुर्वेदी, इलाहाबाद, 1953
6. प्राच्य प्रतिमा, कृष्णदत्त बाजपेयी, 1956







7. हिन्दू देव परिवार का विकास, रमाशंकर त्रिपाठी, 1996

**स्थापत्य कला एवं प्रतिमा विज्ञान से संबंधित ग्रन्थ**

1. भारतीय कला, डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल, पृथ्वी प्रकाशन, बनारस, 1966
2. भारतीय वास्तुकला का इतिहास, प्रो० कृष्णदत्त वाजपेयी, हिन्दी समिति, लखनऊ, उ. प्र.
3. प्राचीन भारत की वास्तुकला, डॉ० महेन्द्र वर्मा, आर्य बुक डिपो, दिल्ली, 1996
4. चन्देल शिल्प में नृत्य एवं संगीत, डॉ० महेन्द्र वर्मा, कुमार प्रकाशन, झांसी, उ. प्र.।
5. इंडियन आर्किटेक्चर, पर्सी ब्राउन, भाग 1 व 2
6. प्रतिमा-विज्ञान, डॉ० इन्दुमति मिश्रा, म. प्र. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, सन् 1972
7. प्रतिमा विज्ञान, डॉ० द्विजेन्द्र नाथ शुक्ल, वास्तु वांगमय प्रकाशन, लखनऊ, उ. प्र.।
8. मूर्ति-विज्ञान, गणेश हरि खेर, भारतीय इतिहास संशोधक मंडल, पूना

I H96M, SIN-P



182781





GURUKUL KANGRI LIBRARY	
Signature	Date
Access No.	Yash' Raj (46-Train)
Class No.	Yash' Raj
Cat No.	
Tag etc.	
E.A.R.	
Recomm. by	
Data Ent. by	Yash' Raj
Checke	

पुस्तकालय

## गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वर्ग संख्या **JH96m** आगत संख्या **182781**  
**STN-P**

पुस्तक-विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित 30 वें दिन यह पुस्तक पुस्तकालय में वापस आ जानी चाहिए अन्यथा 50 पैसे प्रतिदिन के हिसाब से विलम्ब शुल्क लगेगा।

181331



GURUKUL KANGRI LIBRARY	
Signature	Date
Access No.	Yanti Raj (46-Trainee)
Class No.	Yanti Raj
Cat No.	
Tag etc.	
E.A.R.	
Recomm. by	
Data Ent. by	Yanti Raj
Checke	



